# विवेकशिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिक

वर्ष—१४ | सितम्बर-अक्टूबर—१९९६ | अंक—९-१०

रामकृष्ण निलयम जयप्रकाश नगर, रायपुर (छ.ग.)

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५१. श्री श्री रामगोपाल सेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बक्सरिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री मोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोहिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल गोलेचा, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया मेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामबन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई वी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)

# इस अंक में


| | | |
|---|---|---|
| १. श्रीरामकृष्ण ने कहा है | | १ |
| २. देवी स्तुति : (संक्षिप्ता) | | २ |
| ३. श्रीरामकृष्ण की बातें | स्वामी निर्वाणानन्द | ३ |
| ४. भारतीय संस्कृति का महानायक श्रीकृष्ण | रतनलाल जोशी | ५ |
| ५. रावन रथी विरथ रघुवीरा | डॉ० शत्रुघ्न | ९ |
| ६. भगवत्प्रेम (१) | स्वामी यतीश्वरानन्द | १४ |
| ७. विज्ञान एवं मानव मूल्य (५) | स्वामी रंगनाथानन्द | २२ |
| ८. भगवान श्रीरामकृष्ण के प्रति (कविता) | गोवर्धन प्रसाद | २६ |
| ९. सत्यमेव जयते | स्वामी योगात्मानन्द | २८ |
| १०. स्वामी विवेकानन्द तुमसे कहते हैं | | ३३ |
| ११. उठो ! जागो !! | स्वामी निखिलेश्वरानन्द | ३४ |
| १२. महाभारत | स्वामी नित्यज्ञानानन्द | ३९ |
| १३. पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली में आध्यात्मिकता का समावेश | डा० विश्वम्भर व्यास | ४३ |
| १४. मुनहला नेवला | स्वामी विवेकानन्द | ४६ |
| १५. समाचार एवं सूचनाएँ | | ४८ |

[illegible]
[illegible]

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — १५ | सितम्बर-अक्तूबर — १९९९ | मूल्य — ५.००

इष्टदेव का दुर्लभ कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रमती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
( बिहार )
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य— | ५०० रु० |
| वार्षिक— | ४० रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से— | ५५ रु० |
| एक प्रति— | ४ रु० |

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

ईश्वर यदि सर्वत्र में विराजमान है तो हम उन्हें देख क्यों नहीं पाते ? काई से ढँके तालाब के किनारे खड़े होकर देखने पर तुम्हें उसमें पानी नहीं दिखाई देगा। अगर तुम पानी देखना चाहते हो तो तालाब पर से काई हटा दो। माया के पर्दे से ढकी हुई आँखों से देखकर तुम लोग कहते हो कि हमें ईश्वर क्यों नहीं दिखाई देते। अगर तुम ईश्वर को देखना ही चाहते हो तो आँखों पर से माया का पर्दा हटा डालो।

( २ )

बिल्ली जब अपने बच्चे को दाँतों से पकड़ती है तो उसे कुछ नहीं होता, लेकिन जब चूहे को पकड़ती है तो चूहा मर जाता है। इसी तरह, माया भक्त को नष्ट नहीं करती, भले ही वह दूसरों का विनाश कर डालती है।

( ३ )

धुएँ से भरी काली कोठरी में तुम चाहे जितनी सावधानी क्यों न बरतो, तुम्हारे बदन में कुछ न कुछ दाग लग ही जाता है। वैसे ही, स्त्रियों के संग रहकर मनुष्य कितनी भी सावधानी और संयम क्यों न बरते, उसमें थोड़ा न थोड़ा कामभाव अवश्य जागता है।

( ४ )

हण्डी में रखे पानी और चावल-दाल, आलू को तब तक छुआ जा सकता है जब तक हण्डी आग पर नहीं रखी जाती। जीव की देह मानो हण्डी है और धन-मान, विद्या-बुद्धि, जाति-कुल आदि मानो चावल, दाल, आलुओं की तरह हैं। अहंकार ही आग है। अहंकार-रूपी अग्नि के ही कारण जीव गरम (गर्वीला) होता है।

# देवी स्तुतिः (संक्षिप्ता)

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ १
आधारभूता जगतस्त्वमेका, महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ २
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या, विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः ॥ ३
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ४
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ५
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्ग देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ६
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ७
सर्वमंङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८
सृष्टि स्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९
शरणागत दीनार्त परित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १०

---

**भावार्थ**—हे देवि, हे शरणागत की पीड़ा दूर करनेवाली, तुम प्रसन्न होओ। हे अखिल विश्व की जननि, प्रसन्न होओ, विश्वेश्वरि, विश्व का पालन करो, देवि, तुम्हीं चराचर जगत् की अधीश्वरी हो ॥१॥ तुम्हीं जगत् की आधारस्वरूपा हो, क्योंकि पृथ्वीरूप में तुम्हारी ही स्थिति है। हे अलंध्यवीर्ये, तुम्हीं जलरूप में स्थित हो जगत् को तृप्त करती हो ॥२॥ तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परामाया हो। हे देवि, तुमसे सभी सम्मोहित हैं। तुम्हीं प्रसन्न होने पर संसार को मुक्ति देती हो ॥३॥ हे देवि, समस्त विद्याएँ तुम्हारे ही विभिन्न स्वरूप हैं। सभी स्त्रियाँ तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब, तुमसे ही विश्व परिपूर्ण है। तुम स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परा वाणी हो ॥४॥ जब सर्वस्वरूपिणी एवं स्वर्ग और मुक्तिप्रदायिनी रूप में स्तुति की गयी तब इससे अच्छी उक्तियाँ तुम्हारी स्तुति के लिए और क्या हो सकती है ॥५॥ तुम बुद्धिरूप में सबके हृदय में विराजमान हो, तुम भोग और मुक्ति प्रदान करनेवाली हो। हे देवि, हे नारायणि, तुम्हें नमस्कार है ॥६॥ कला, काष्ठा आदि के रूप में क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्तन) की ओर ले जानेवाली तथा विश्व का उपसंहार करने में समर्थ नारायणी, तुम्हें नमस्कार है ॥७ तुम सब प्रकार का मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो, तुम सब पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है ॥८॥ तुम सृष्टि, पालन और संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा सर्वगुणमयी हो। हे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥९॥ शरण में आये हुए दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा में संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनवाली नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार है ॥१०॥

# श्रीरामकृष्ण की बातें

—स्वामी निर्वाणानन्द

[ पूज्यपाद महाराज रामकृष्ण मठ के उपाध्यक्ष थे। आदर से लोग उन्हें सूर्य महाराज अथवा सुज्जि महाराज कहकर पुकारते। प्रस्तुत संस्मरण साधु एवं गृहस्थ भक्तों से प्राप्त, विभिन्न अवसरों में पूज्यपाद महाराजजी के कथोपकथन से संकलित एवं 'उद्बोधन' के फाल्गुन १४०२ संख्या २ में प्रकाशित लेख का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं—रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तम नगर, अरुणाचल प्रदेश में कार्यरत स्वामी चिरन्तनानन्द। ]

---

महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) कहते थे, दक्षिणेश्वर में रहते समय वे ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) के कमरे में ही सोते थे। रात्रि में जब भी नींद टूटती तो देखते कि या तो ठाकुर एकदम निःशब्द समाधिस्थ होकर बैठे हैं या फिर भावस्थ होकर कमरे के चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं और 'माँ', 'माँ' कह रहे हैं। उस समय उनके अंगों पर कपड़ा-लत्ता प्रायः ही नहीं रहता था। व्यावहारिक आचरण में उन्हें अनेक बार नियम के बाहर देखा गया है किन्तु अन्य समय स्वाभाविक अवस्था में अपने मसाला (पान) के बटुआ तक को भी नहीं भूलते थे।

एक दिन की घटना महाराज बताते हैं, "रात के करीब दो बजे ठाकुर आलू-परवल-मसाला एक स्थान पर व्यवस्थित कर रख रहे हैं। उस समय ठाकुर का पेट ठीक नहीं था। झोल (रसेदार तरकारी) एवं भात खाते थे। बाद में पकाने के समय अधिक मसाला न दे डाले अथवा जरूरत से ज्यादा पका न दे इसलिए पहले से सब व्यवस्थित कर एक स्थान पर रख रहे हैं। ठाकुर के भांजा हृदय ने उनकी यह अवस्था देखकर कहा, 'मामा यह क्या कर रहे हो?' ठाकुर ने तब कहा—'कल के झोल-भात के लिए सब ठीक कर के रख रहा हूँ।' हृदय ने तब कहा, 'वह तो कल के लिए। इतनी रात में क्या?' ठाकुर की अवस्था कब कैसी रहे वे स्वयं नहीं जानते। हो सकता है भाव की अवस्था में विभोर वे उस समय किसी अन्य जगत में रहेंगे, इसीलिए स्वाभाविक अवस्था में यह सब व्यवस्थित कर रख रहे हैं। हृदय के प्रश्न के उत्तर में ठाकुर ने यही कहा, 'कल किस अवस्था में रहूँगा इसका कोई ठीक नहीं है।"

यह बात हम गहराई से समझने की यदि चेष्टा करें तब कहीं कुछ धारणा कर सकते हैं।

महाराज कहते थे, "देखो, युगावतार आने से एक शक्ति जाग्रत होती है। ठाकुर युगावतार हैं, उनके आगमन से एक शक्ति जाग्रत हुई है। इस सुअवसर का फायदा उठा लो, यदि इस जन्म में नहीं हुआ तो बहुत से जन्म लग जायेंगे। अतः बलपूर्वक लग जाओ, इसी जन्म में हो जाएगा।"

अन्य एक दिन महाराज ने हमलोगों को और एक आशावाणी सुनायी थी। वचनामृत के लेखक मास्टर महाशय बलराम मन्दिर में आए हैं। महाराज उस समय बलराम मन्दिर में रह रहे हैं। महाराज के साथ ठाकुर के सम्बन्ध में विविध प्रसंग हो रहा है। महाराज मानो अपने स्वभावसिद्ध भावराज्य में निमग्न हैं। एकटक दृष्टि मानो किसी एक अतीन्द्रिय राज्य में विचरण कर रही है। अचानक कह उठते हैं, "देखिए मास्टर महाशय, इस बार ठाकुर ने आकर जीवलोक एवं शिवलोक—नरलोक एवं देवलोक के बीच एक Bridge (सेतु) का निर्माण कर दिया है। अब मनुष्य सरलतापूर्वक भगवान के पास जा सकेगा।"

ठाकुर की महिमा की बात सोचते-सोचते बाबूराम महाराज की बात याद आती है। बाबूराम महाराज बेलुड़मठ घाट के पोस्ता (बाँध) के पास खड़े हैं। मैं उन्हें देखकर उनके पास गया। वे आवेगपूर्वक कह उठे, "यहाँ पर खड़े-खड़े ही एक दिन देखा था (भाव में दर्शन), सम्पूर्ण जगत में अशान्ति रूपी अग्नि धू-धू कर जल रही है। चारों तरफ आग ही आग! और यहाँ आकर सब बुझ गया, सब शान्त हो गया।" उनकी बात सुनकर मुझे इतनी खुशी हो रही थी कि 'यहाँ' शब्द से उन्होंने क्या Mean (अर्थ) किया यह जानने की बात उस समय मेरे मन में बिल्कुल ही नहीं आयी। मुझे लगा था ठाकुर को लक्ष्य करके ही उन्होंने यह बात कही थी। अर्थात् संसार में जो दंगा-फसाद, मारपीट, कत्लेआम चल रहे हैं, उनका समाधान एकमात्र ठाकुर को आश्रय करने से ही हो जाएगा।

ठाकुर नित्य से लीला में अवतरण के समय विभिन्न Sphere (स्तर) से बोलने की चेष्टा करते थे। जब नित्य से लीला में एक सौ सीढ़ी नीचे उतर आते, तब मात्र 'ऊँ' 'ऊँ' कहते। महाराज कहते थे, "ठाकुर जब समाधि से नीचे उतरते तब वे गुनगुन कर कितनी ही बातें कहते, वह सब कुछ भी समझ में नहीं आता था। बहुत देर बाद उनकी बातें स्पष्ट होती थीं।"

ठाकुर प्रायः सब समय ही भावसमाधि में रहते। राजा महाराज कहते थे, "समाधि से उतरने के समय ठाकुर हाथ को मुख से स्पर्श करते हुए छाती तक ले आते और मानो कुछ बोलने की कोशिश करते। कहते, कितनी ही बातें तुम लोगों को बताना चाहता हूँ किन्तु माँ जैसे मुँह दबा दे रही है।"

बेलुड़मठ से कुछ ही दूर बाली में कल्याणेश्वर शिव मन्दिर है। ठाकुर कल्याणेश्वर शिव के दर्शन करने गए थे। राजा महाराज उनके साथ थे। उन्होंने कहा, "कल्याणेश्वर के दर्शन करके ठाकुर को इतनी गम्भीर समाधि हो गयी थी कि उन्होंने ठाकुर को इस प्रकार की समाधि में और कभी नहीं देखा। सम्पूर्ण मन्दिर प्रकाश से जगमगा उठा था। ठाकुर और कल्याणेश्वर शिव एक हो गए थे।" कल्याणेश्वर स्वयंभू लिंग हैं। अत्यन्त जाग्रत हैं। राजा महाराज प्रायः ही मन्दिर में जाते थे। अभी भी मठ से प्रति सोमवार कल्याणेश्वर शिव के लिए पूजा-सामग्री भेजी जाती है।

ठाकुर के आगमन से ही सत्ययुग का प्रारम्भ हो गया है अतः हम सब सत्ययुग में जन्म लिए हैं, हम सभी सत्ययुग के मनुष्य हैं।

मैं प्रतिदिन 'वचनामृत' पढ़ता हूँ। 'वचनामृत' पढ़ने से रोज ही उसमें नयापन महसूस होता है। रोज ही ठाकुर के एक-एक शब्द का नया-नया अर्थ मालूम होता है। इसका कारण और कुछ नहीं है, बल्कि 'अनन्तभावमय' ठाकुर जिस भाव

राज्य में अवस्थित रहकर बातचीत करते थे उस भाव राज्य में जब तक कोई न पहुँच सके तब तक उनकी बातें एवं उसके अर्थ पाठक स्वयं अपने-अपने भाव के अनुसार एक-एक दिन में अलग-अलग महसूस करेंगे ही। कभी-कभी देखना 'वचनामृत' में ठाकुर की कोई बात विशेषभाव से मन में प्रवेश कर जाती, इस बात पर तब चिंतन करता रहता, क्रमशः देखता कि इस शब्द के विभिन्न अर्थ मन में आ रहे हैं, किन्तु वह सब उनकी बातों का ठीक-ठीक अर्थ हो हो ऐसा नहीं भी हो सकता। ठाकुर की बातों को ठीक-ठीक समझने के लिए साधन-भजन करके मन शुद्ध करना पड़ेगा। वे जिस स्तर में, जिस उच्चभूमि में अवस्थित होकर बातचीत करते उसकी ठीक-ठीक उपलब्धि करने के लिए साधन-भजन द्वारा मन को पवित्र कर उस स्तर तक उठाना होगा।

'वचनामृत' में जिनकी बातें हम पढ़ते हैं वे कोई साधारण मनुष्य नहीं थे, स्वयं जगदम्बा ने उनके शरीर का आश्रय लेकर अपनी लीला की थी। वे एवं जगज्जननी अभेद थे। महाराज से एक घटना सुनी थी—

एक दिन दक्षिणेश्वर में ठाकुर ने महाराज को अपनी चरण-सेवा करने के लिए कहा। महाराज भी सेवा में नियुक्त हो गए। कुछ देर बाद महाराज ने देखा, भवतारिणी मन्दिर, काली मन्दिर के भीतर से एक काली लड़की धीरे-धीरे ठाकुर के कमरे में प्रवेश करती है एवं ठाकुर की ओर अग्रसर हो जाती है, क्षणभर में ही वह लड़की ठाकुर के श्रीअंग में मिल जाती है। महाराज के मन में संदेह हुआ कि क्या उन्होंने गलत देखा है ? इसी समय अन्तर्यामी ठाकुर महाराज से कहते हैं, "क्या, (चरण सेवा का) फल शीघ्र ही मिल गया तो !"

♣

५ सितम्बर, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर विशेष

# भारतीय संस्कृति का महानायक कृष्ण

—रतनलाल जोशी

श्रीकृष्ण मानव जीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ है, शील-शक्ति-सौंदर्य में सर्वोत्तम है उस सब के सम्पूर्ण विकास हैं। उनके जैसा विलक्षण चरित-नायक संसार की किसी भी संस्कृति में नहीं मिलता। मन-मस्तिष्क और कर्म-कृतित्व के क्षेत्र में सर्वोच्च उत्कर्ष के वह प्रतीक हैं। भारत के साहित्य और संस्कृति पर श्रीकृष्ण का प्रभाव अतुलनीय है—वे उसके अजस्र रसोन्मेष हैं, प्राण-स्रोत हैं। लोकमानस पर जितना विस्तृत एवं गहरा प्रभाव उनके व्यक्तित्व एव जीवन-दर्शन का है, उतना अन्य किसी अवतार अथवा लोकनायक का नहीं। संक्षेप में, मनुष्य की सर्वांगीण सार्थकता के वह पूर्णोदय हैं, श्रेय एव आनन्द की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हैं।

## भारतीय संस्कृति का महान नायक

श्रीकृष्ण अपने युग के त्राता राजनेता थे।

बाहुबल के साथ बुद्धि बल में भी वह अद्वितीय थे। उस समय का भारत कई राज्यों एवं खण्डों में विभक्त था। सर्वत्र मत्स्य-न्याय की परिस्थितियां थी। अधिकांश शासक प्रजापीड़क और अन्याय-अत्याचार के पोषक थे। रामराज्य की परम्परा मदोन्मत्त निरंकुश शासकों के हाथों अनाचार और दमन की क्रूरता में परिणत होकर प्रजा के लिए कालरात्रि का आभास दे रही थी। स्वयं श्रीकृष्ण को जन्म से लेकर अपने किशोर-काल तक मथुरा के राजा अपने मामा कंस के नृशंस षड्यन्त्रों के आतंक में रहना पड़ा था। जन्म के समय भी उनके माता-पिता कंस के कारागार में बन्दी जीवन बिता रहे थे। अपने गोकुल प्रवास में भी श्रीकृष्ण को कंस के जिन घात-प्रतिघातों से जूझना पड़ा था, वह भी कम लोमहर्षक नहीं था। अतः यह स्पष्ट है कि अनाचारी, प्रजाद्रोही शासकों से राष्ट्र के परित्राण करने का संकल्प श्रीकृष्ण ने अपनी घुट्टी में ही पा लिया था।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव की चारित्रिक परम्परा वैयक्तिक आचरण की विकृतियों से ऐसी पतनोन्मुख हो चुकी थी कि कंस ने अपने ही पिता उग्रसेन को राज्य च्युत करके मथुरा के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इसके पीछे उसके ससुर मगध के महाबली राजा जरासंध और साढ़ू चेदि-नरेश शिशुपाल की शक्ति का प्रोत्साहन था। मथुरा के अथक-वृष्णि गणराज्य एव हस्तिनापुर के कुरु राज्य के अतिरिक्त भारत के सभी राजा जरासंध का लोहा मानते थे। कंस, जरासंध और शिशुपाल के अदम्य शक्ति-त्रिकोण के प्रबल प्रहारों से राष्ट्र के चरित्रादर्श का ढांचा निरन्तर जर्जर होता जा रहा था।

श्रीकृष्ण— जैसे दक्ष युगनेता की कर्तव्य-चेतना इस धर्मग्लानि को अधिक सहन नहीं कर सकी। उन्होंने पहले कंस को मार कर जरासंध का दक्षिण बाहु तोड़ा। फिर भीम के द्वारा जरासंध का वध करवा कर सार्वभौम शक्ति में विकसित होते जा रहे शोषक-पीड़क साम्राज्यवाद से राष्ट्र के भविष्य को निर्द्वन्द्व किया। और, अन्त में स्वयं शिशुपाल का वध करके श्रीकृष्ण ने महाशक्तियों के इस आसुरी संघ का आखिरी स्तम्भ भी ढहा दिया।

राम और कृष्ण भाग्य विधाता हैं, भारत के भौगोलिक व्यक्तित्व के निर्माता हैं जिसमें उन्होंने सांस्कृतिक गौरव के बीज बोये, चरित्र के खाद का पोषण दिया और पराक्रम का अमृत सींचकर जिसे उन्होंने अनुपम सौरभ में पुष्पित किया। श्रीकृष्ण भारत-राष्ट्र को अपने स्वाभाविक मानवीय व्यक्तित्व एव लोकरंजक राजनीतिक इकाई में अखण्ड अविच्छिन्न देखने के स्वप्नद्रष्टा राष्ट्र नेता थे। उन्होंने युधिष्ठर से राजसूय यज्ञ करवाया, जिसके फलस्वरूप कई शासन खण्डों में बिखरी राष्ट्र की राज शक्ति धर्मराज युधिष्ठिर के प्रजा वत्सल राजसूत्र में बन्ध गयी और सत्य एवं धर्माचरण के संरक्षण के दुर्भेद्य दुर्ग में विकसित होती गयी।

## न्याय के पक्षपाती कृष्ण

सभा पर्व (महाभारत) में राजसूय-यज्ञ का रोचक वृतांत प्रकारान्तर से श्रीकृष्ण के शौर्य, औदार्य, बौद्धिक तेजस्विता और चारित्रिक महानता का ही जयघोष है। यज्ञशाला में सहस्र-सहस्र कीर्तिवान राजाओं एवं मनीषियों के होते हुए भी भीष्म ने प्रथम पूजा के लिए श्रीकृष्ण का ही नाम प्रस्तावित किया था। चेदि-नरेश शिशुपाल ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। भीष्म एवं श्रीकृष्ण को उसने जी-भर जली-कटी सुनायी और यज्ञ भंग करने के लिए भी उपस्थिति राजाओं

को उसने भड़काया। अन्त में, श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध कर यज्ञ की रक्षा की।

राजसूय यज्ञ कराने का श्रीकृष्ण का मूल उद्देश्य पांडवों को देश के सामूहिक सैन्य सूत्रों का शक्ति केन्द्र बनाना था, श्रीकृष्ण अपने उद्देश्य में सफलतम हुए। फलतः पांडवों के नेतृत्व में देश के अनेक शक्तिशाली राजाओं का एक महासंघ निर्मित हो गया। महाभारत के युद्ध में इसी शक्ति-पुंज से लड़ाकर श्रीकृष्ण ने अनीति-अन्याय के प्रतीक मदांध कौरवों के साथ कई बलवान राजाओं के त्रास से धरती को मुक्त किया था। महाभारत के युद्ध में राष्ट्र को दोनों ओर से असंख्य सैनिकों एवं युद्ध कौशल में विख्यात योद्धाओं की बलि चढ़ानी पड़ी थी, किन्तु राष्ट्र को 'धर्मग्लानि' एवं चारित्रिक भ्रष्टता से उबारने एवं प्रजा को भय, आतंक एवं त्रास से मुक्त करने के लिए कोई भी बलिदान अनुचित एवं महंगा नहीं होता है—श्रीकृष्ण इस मंत्र के प्रतिष्ठाता हैं। संसार की उन्नत संस्कृतियों का इतिहास श्रीकृष्ण के इस निष्कर्ष का समर्थन करते हुए इसे प्रमाणित भी करता है। अन्याय का उन्मूलन ही न्याय का बद्धमूलन है। 'चाणक्य नीति' का ऐसा वचन है।

'परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्' श्रीकृष्ण के जीवन का ध्येय था। अपने इस ध्येय की पूर्ति में श्रीकृष्ण ने अपने स्वजनों-आत्मीयों के मोह-ममत्व को भी आड़े नहीं आने दिया। अपने कुटुम्बी यादवों, पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रों को भी जब उन्होंने शक्ति और सत्ता के मद में सत्यपथ से भ्रष्ट पाया तो स्वयं अपने ही हाथों उन्हें मौत के घाट उतार दिया। लोकहित, राष्ट्रमुक्ति और मानव-अभय की तौल में श्रीकृष्ण की तुला पर अन्य सब कुछ तृणवत् था। अपने इस ध्येय को 'धर्म' कह कर उन्होंने महाभारत में जगह-जगह दोहराया है। दुर्बल-दुःखी और त्रस्त को रक्षा का जो वचन उन्होंने दिया, उसे सदा निभाया—'भागवत' और 'महाभारत' ऐसे उदाहरणों से भरे पड़े हैं। 'महाभारत' के उद्योग पर्व में शांतिदूत बनकर जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जा रहे थे तो द्रौपदी ने उन्हें अपने वचनों की याद दिलायी। भरी सभा में कौरवों द्वारा उसे वस्त्रविहीन करने की दुष्चेष्टा और तदर्थ उन्हें दण्ड देने के श्रीकृष्ण के आश्वासन का जब द्रोपदी ने उन्हें स्मरण कराया तो उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—

चलेद्धि हिमवांछैलो मेदिनी शतधा भवेत्।
भौः पतेत सनक्षत्रा न मे मोघ वचा भवेत्॥

हिमवान पर्वत विचलित हो जाये तो हो जाये, पृथ्वी के सौ टुकड़े हो जायें तो हो जायें, आकाश नक्षत्रों के साथ धरती पर गिर पड़े तो गिर पड़े मेरा दिया हुआ वचन निष्फल नहीं हो सकता।

## चारित्रिक नवनिर्माण का प्रवर्तक योगी

श्रीकृष्ण का सारा जीवन भारत राष्ट्र के भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं चारित्रिक नव-निर्माण का पवित्र व्रतपालन है। कारागार के

**भारत के सांस्कृतिक इतिहास में वैसे तो कई नायक महानायक, संत, योगी, तपस्वी, त्यागी आदि का अवतरण देखा जा सकता है, किन्तु जब भी किसी एक व्यक्तित्व में इन तमाम गुणों के समागम की चर्चा होगी तो कृष्ण का नाम उनमें सर्व प्रथम होगा। प्रेम के उदात्त तत्व के साथ-साथ श्रद्धा, दया और त्याग का मिलन कृष्ण के व्यक्तित्व का सबसे सबल पक्ष है। लेखक ने श्रीकृष्ण को भारतीय संस्कृति का महानायक माना है। लेखक का कहना है कि भारत सांस्कृतिक धरातल पर हमेशा कृष्ण का ऋणी रहेगा।**

जन्म से लेकर व्याध के बाण से स्वर्गारोहण तक श्रीकृष्ण की जीवन-गाथा दुष्टों, धूर्तों, आततायियों से जूझने, उनका मूलोच्छेदन करने के 'धर्मयुद्ध' (क्रूसेड) का ऐसा दारुण किन्तु उदात्त शौर्योपाख्यान है जिसकी जोड़ संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलती। उन्होंने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रजापालक शासनतंत्रों की प्रतिष्ठा ही नहीं की, स्वराज्य की रक्षा के लिए सर्वशक्ति सम्पन्न केन्द्र के साथ राष्ट्र की दूरस्थ सीमाओं पर अभेद्य दुर्गों के रूप में चौकियां भी स्थापित की। इतिहास साक्षी है, भारत के पश्चिमी द्वार से द्वारका के दुर्ग की चौकी को चुनौती देकर कोई आक्रांता कई वर्षों तक भारत में घुसपैठ नहीं कर सका था।

महाभारत-युद्ध के प्रारम्भ में अर्जुन को अपने स्वजनों बंधु-बांधवों को मारने में जब आत्मग्लानि एवं विरक्ति की अनुभूति हुई और उसने लड़ने से इनकार कर दिया तो श्रीकृष्ण ने इस विषाद को 'अधर्म' बताते हुए अध्यात्म एवं आचरण की सारी नूतन-पुरातन परम्पराओं का सत्व निचोड़ कर 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' ही धर्म है, यह तथ्य उसके गले उतारा। श्रीकृष्ण के इस धर्मोपदेश को व्यास जी ने सात सौ श्लोकों में छंदोबद्ध करके 'श्रीमद्भगवद्गीता' के नाम से लोक मंगल मूलक आशीर्वाद के रूप में मानव-समाज को दिया है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' श्रीकृष्ण के सर्वोच्च आत्मविकास की अभिव्यक्ति है। यह उनका मात्र शास्त्रीय ज्ञानकोष नहीं है, वरन् मनुष्यत्व के उच्चादर्शों को अपने आचरण में मूर्त करते हुए उनके द्वारा जिये गये जीवन का अनुभव-सौरभ है। जीवन की सार्थकता का दुग्धपान कराने के लिए गीता के रूप में श्रीकृष्ण मानव-वंश के लिए एक सनातन-दुधारू कामधेनु छोड़ गये हैं। भारतवासियों पर तो गीता का ऋण अपरिमित है—पुरातन युगों की तरह, इस युग में भी तो लोकमान्य तिलक एवं महात्मा गाँधी की आत्माओं में व्यक्त होकर श्रीकृष्णोक्त गीता भारत राष्ट्र की मुक्ति का माध्यम बनी है।

किन्तु श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व उनकी बुद्धि एवं बल की पराकाष्ठाओं तक ही सीमित नहीं है। युग की महान विभूतियों में शिरोमणि होते हुए भी वे सर्वजन वल्लभ हैं। अपने सखा अर्जुन के सारथी हैं। गोकुल के गोप-गोपियों के रास रंग के रसेश्वर हैं—'अहीर को छोहरियों को छछिया-भर छाछ पर' नाचने वाले नटवर कान्हा हैं। प्रेम की मूर्ति हैं। उनकी मुरली की तान राधा को ही नहीं, गायों, पशु-पक्षियों और वन-विटपों को भी मोह लेती है।

कालान्तर में श्रीकृष्ण व्रज से बहुत दूर द्वारका जाकर बस गये, किन्तु प्रेमपगे व्रजवासियों की याद उन्हें बिसरती नहीं, बार-बार उनकी आंखें गीली हो जाती हैं—'ऊधो, मोहि व्रज बिसरत नाही।' और चक्रवर्ती सम्राटों के लिए भी दुर्लभ द्वारकाधीश श्रीकृष्ण अपने जीवन के संध्याकाल में सूर्यग्रहण के पर्व पर नंद बाबा, जसोदा मैया और राधा सहित अन्य गोप-गोपियों से मिलने कुरुक्षेत्र जाते हैं। दोनों ओर के प्रेम-विरह की विह्वलता, अगाधता को देखकर राज राजेश्वरी रुक्मिणी और सत्यभामा भी कृतकृत्य हो जाती हैं, अपने समर्पण के अहंकार को भूल जाती है। राधा की चरण धूलि लेकर द्वारका लौटती है।

## भारत तेरा ऋणी है कान्हा

यह 'भागवत' के कृष्ण हैं—प्रेम-माधुर्य के रसार्णव। उद्धव के ज्ञान का यहाँ ग्रंथि-विमोचन हुआ है, किसी ऋषि-महर्षि द्वारा नहीं, अपढ़-निरक्षर गोपियों के प्रेम लपेटे, अटपटे उलाहनों

द्वारा। श्रीकृष्ण का यह व्यक्तित्व भक्ति के शत्-शत् रस-स्रोतों का प्राण-प्रवाह बनकर देश के समस्त साहित्य एवं ललित कलाओं में मूर्त हुआ है। वस्तुतः श्रीकृष्ण ही हमारे साहित्य और कला में सौंदर्य, माधुर्य एवं रस-स्फूर्ति के पूर्णचन्द्र हैं। भारतीय संस्कृति की वह प्रेरणा, प्राणात्मा और प्रज्ञाशक्ति हैं—'परमा गतिम्' हैं। श्रीकृष्ण के बिना हमारी कलाएं लूली हैं और हमारा साहित्य गूंगा।

बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में श्रीकृष्ण मानवमुक्ति के विधाता है—जहाँ भी उन्होंने मनुष्य को शृंखला में जकड़ा देखा, उसे मुक्त किया। धर्म को उन्होंने पाखंड-औपचारिकता से मुक्त किया, कर्म को उन्होंने आग्रह-आतंकों से मुक्त कर आचरण की श्रेयोन्मुखी भूमिका प्रदान की। प्रेम को उन्होंने स्वार्थ और संकीर्णता के कूप से बाहर निकाल कर परमानन्द की पुण्यतोया गंगा का प्रतीक बना दिया। भारतवासी श्रीकृष्ण को भूल नहीं सकते, उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकते। हर भारतवासी के प्राणों की वही पर उसकी धड़कनों के अक्षरों में ये ऋण लिखे हुए हैं और इन ऋणों की संख्या बढ़ती ही जायेगी, क्योंकि आज भी जब-जब हमारी नाव डगमगाती है तो हमारे मानस-पट पर श्रीकृष्ण भुजा उठाये यों आश्वासन देते हुए प्रकट हो जाते हैं—

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।

हे अर्जुन, तू इसे ध्रुव सत्य मान मेरे कि भक्त का कभी पराभव नहीं होता, उसका कभी पतन नहीं हो सकता।

२१ अक्टूबर, विजयादशमी

# रावन रथी, बिरथ रघुवीरा

—डा० शत्रुघ्न
राजेन्द्रनगर, पटना

तुलसीदास ने मानस के लंकाकाण्ड के अंतिम युद्ध यानी राम-रावण के निर्णायक युद्ध के समय एक महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित कर दिया है। आधुनिक युग सा निराला जी ने राम की शक्ति पूजा में अन्तिम युद्ध के मध्य में राम की विजय के प्रति शंका प्रकट कर दी है। परन्तु मानस में अन्तिम युद्ध के आरम्भ में रावण को रथ पर आते देखकर विभीषण के मन में विजय के प्रति संशय उत्पन्न होता है। राम संशय नहीं आत्म-विश्वास से पूर्ण हैं। इसके पहले लक्ष्मण को शक्तिवाण लगने के बाद वे अवश्य ही शोकाकुल हो जाते हैं। परन्तु, निर्णायक युद्ध के समय वे संशयग्रस्त नहीं होते। विभीषण की शंका और जिज्ञासा स्वाभाविक है। यह आशंका राम के प्रति अधिक प्रेम के कारण है, यह तुलसी का कहना है। परन्तु रावण की शक्ति से सुपरिचित रावण को रथ पर आते देख कर संदेह करना सहज स्वाभाविक है क्योंकि वह राम की शक्ति

पूरी तरह परिचित नहीं है। राम के प्रति प्रेम के कारण ही उसमें विजय के प्रति संदेह पैदा होता है। उसने कहा है—

रावनु रथी बिरथ रघुवीरा।
देखि विभीषण भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा।
बन्दि चरण कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तन पदत्राना।
केहि विधि जितब वीर बलवाना॥

राम ने बड़े आत्मविश्वास के साथ अपने सखा विभीषण के संशय को दूर करने का प्रयत्न किया है। दोहा सं० ८०(क) और उसके पहले की चौपाई में अपने विशिष्ट विजय-रथ का वर्णन करके आचार प्रधान धर्म की अखंड साधना के अमोघ प्रभाव को उद्भूत कर दिया है। निराला के राम रावण की शक्ति से हताश से लगते हैं। इसलिए वे कृतिवास रामायण के अनुसार शक्ति की उपासना करते हैं। परन्तु तुलसी के राम रावण के साथ युद्ध में हताश नहीं होते। महाभारत में युद्ध के आरम्भ होने के पहले रथारूढ़ अर्जुन कौरवों की सेना में अपने सगे-सम्बन्धियों को देखकर विषादमग्न हो जाता है। अपनी विजय के लिए सगे सम्बन्धियों पर प्रहार करने से सहम जाना मानवीय संवेदना का प्रश्न है। अर्जुन भी हताश नहीं है। उसके रथ के सारथी श्रीकृष्ण हैं। ध्वज तो कपिध्वज है। पास में गाण्डीव है। अतः कौरव सेना को देख कर हताश होने का सवाल नहीं उठता। अर्जुन का प्रश्न संवेदनशील मानव हृदय की आकुलता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में रथ भी यत्र-तत्र प्रतीक बन गया है। कठोपनिषद् में ही संभवतः सबसे पहले रथ के रूपक को दर्शन-आध्यात्म के धरातल पर उपस्थित किया गया है। ऋषि ने कहा है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

मानवशरीर ही रथ है। आत्मा रथी है। मानव बुद्धि सारथी है। मन ही लगाम है। संभवतः इसी के अनुसार महाभारत में प्रज्ञापुरुष श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी हैं। मानस में राम के पास रथ नहीं है। वह विरथी हैं। परन्तु उन्हें विश्वास है कि उनके पास अदृश्य रथ है। वे उसी रथ पर सवार हैं। वे इस रथ पर अवश्य ही विजयी होंगे। संभवतः इसी से संकेत पाकर राष्ट्रकवि दिनकर ने अपने एक प्रसिद्ध खण्डकाव्य को रश्मिरथी कहा है क्योंकि खण्डकाव्य का नायक कर्ण पुण्यमय चरित्र के रथ पर है। मानस में स्वयं राम ने विभीषण को समझाया है।

सुनहु सखा कह कृपा निधाना।
जेहि जय होई सो स्यंदन आना॥

विजय रथ दूसरे प्रकार का होता है। वह घर्घर नाद करने वाला लौहरथ नहीं होता। रावण का रथ लौहरथ का होगा, पर वह धर्ममय नहीं है। धर्ममय रथ पर सवार होने वाला ही अन्तिम विजय पा सकता है। और तब तुलसी ने राम के माध्यम से इस धर्ममय रथ का चित्रण किया है। उन्होंने शुद्ध पारिवारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक आचरण को धर्म माना है। उनमें सौन्दर्य है और शक्ति है। ये दोनों शील से मर्यादित हैं। वे आद्यन्त शीलवान् हैं। उन्होंने अपने लाभ के लिए परिवार, ग्राम, राज्य, देश तथा मानवता को कष्ट नहीं पहुँचाया है। उनके जीवन में अद्वैत चिंतन ही आचरण बन गया है। फलस्वरूप वे अनुभव करते हैं कि उनके पास भौतिक रथ नहीं, धर्ममय रथ है।

प्रथम विधि निर्माता मनु ने धर्म के दस लक्षणों को बताया है।

धृतिः क्षमा दमोस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

धृति यानी धैर्य रखना, दम यानी पशु प्रवृत्तियों का दमन करना, धी यानी बुद्धि को विकसित करना और विद्या यानी जीवन एवं जगत के विकास के लिए निर्देश है। इन्हीं से व्यक्ति वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में आगे बढ़ सकता है। क्षमा करना, अस्तेय यानी चोरी नहीं करना, इन्द्रिय निग्रह यानी ज्ञानेन्द्रियों की प्रबलता को संयमित करना, सत्य बोलना और क्रोध नहीं करना सामाजिक जीवन में ही सम्भव है। अतः यह सामाजिक धर्म या कर्त्तव्य है। इन दस गुणों कर्त्तव्यों की स्थिति रहने पर ही मानव पशुत्व से ऊपर उठ सकता है। मानव-मानव कहला सकता है। इसीलिए कहा जाता है कि धर्म, मजहब, रिलिजन और सम्प्रदाय से भिन्न है, विशिष्ट है।

भागवत पुराण के एकादश स्कन्ध में बताया गया है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, जीवों के प्रति स्नेह एवं परहित की चेतना के साथ काम, क्रोध तथा लोभ से बचना है। महाभारत के पक्ष के अनुसार, अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शुचिता एवं ईर्ष्यारहित—यह छः मानवीय गुण यानी धर्म हैं।

उन्हीं गुणों कर्त्तव्यों अर्थात् धर्म के आधार पर व्यष्टि एवं समष्टि के जीवन की रचना का प्रयत्न होता रहा है। श्रीराम ने अपने सम्पूर्ण जीवन में उन्हीं गुणों को धारण किया है। कर्त्तव्यों को निष्ठा के साथ पूरा किया है। इन्हीं से उनके चरित्र की रचना हुई है। अतः यह धर्म के साकार रूप हैं। तभी तो उनमें आत्म विश्वास है। वे महाकाव्य के धीरोदात्त नायक हैं। वह अपने धर्ममय रथ का स्पष्टीकरण करके विभीषण के सन्देह का निवारण करते हैं। इस धर्ममय रथ के साङ्ग रूपक पर विचार करने से उनका स्वरूप सामने आ जायेगा। राम कहते हैं—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥

रथ में दो चक्के होते हैं जिन पर रथ चलता है। यहाँ शौर्य और धैर्य ही दो चक्के हैं। राम युद्ध के मैदान में हैं। रावण से लोमहर्षक युद्ध होने वाला है। जानकी और जानकी की भूमि की मुक्ति का संघर्ष है। इस स्थिति में शौर्य और धैर्य की आवश्यकता है। केवल शौर्य नहीं, धैर्य भी अपेक्षित है। यहाँ हिंसा एवं अहिंसा का नैतिक प्रश्न नहीं है। अहिंसा वैयक्तिक बने है। कभी-कभी सामूहिक भी है। पर युद्ध के समय हिंसा से भिन्न शौर्य और शौर्य के साथ धैर्य की जरूरत है। धैर्य नहीं रहने पर शौर्य हताश भी हो सकता है। हताशा से बचने के लिए धैर्य की अपेक्षा है। केवल शौर्य बर्बर आक्रमण एवं हिंसा में परिणत हो सकता है। परन्तु राम ने एवं राम की भारत भूमि ने सत्य एवं शील को ध्वजा-पताका को ऊपर उठाकर संकेतित कर दिया है कि शौर्य का प्रदर्शन सत्य के लिए होना है। शील याने मानवीय मर्यादा के साथ युद्ध करना है। हमें इतिहास और आसपास के खण्डहरों से मालूम है कि पश्चिम से भारत पर हुए आक्रमणों ने सत्य एवं शील की ही नृशंस हत्या की है। राम ऐसा नहीं करने वाले हैं। रथ के ऊपर सत्य एवं शील की ध्वजा-पताका है। यह ऊँची शौर्य संस्कृति के उद्घोषक हैं।

आगे राम इस रूपक को स्पष्ट करते हैं—

बल, विवेक दम परहित घोरे।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे॥

इस युद्ध रथ में चार घोड़े हैं। रावण के लौहरथ में भी चार घोड़े हैं, बल अर्थात् शारीरिक शक्ति, विवेक यानी उचित-अनुचित की निर्णायिका बुद्धि, मानवमन की पशु पवृत्तियों का दमन और परमार्थ की चिन्ता—ये ही चार घोड़े हैं। ये ही चार घोड़े रथ को आगे ले चलेंगे तभी तो भयानक शत्रु से युद्ध किया जा सकेगा। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में बल हो। आत्मज्ञान भी बलहीन से सम्भव नहीं है। परन्तु बल के साथ विवेक ही मनुष्यत्व का लक्षण है। केवल बल मनुष्य को पशु बना सकता है। युद्ध में भी राम के धर्म के अनुसार बल के साथ विवेक अपेक्षित है। बल प्रयोग के क्षण में उचित अनुचित का निर्णय आवश्यक है। यही तो धर्म है। अपनी पशु प्रवृत्तियों काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद का दमन करना पशुता से ऊपर उठना है। मनुष्यता को प्राप्त करना है। पशु प्रवृत्ति वाला मनुज तो घोर स्वार्थी होगा। पशुप्रवृत्तियों पर नियंत्रण लगाने वाला ही परहित की बात सोच सकता है। दूसरों का कल्याण सामाजिकता है, मनुष्यता है। यदि इनमें कोई भी घोड़ा निर्बल होगा तो यह रथ आगे नहीं बढ़ सकता है। विजय की संभावना कम हो सकती है। अतः बल, विवेक, दम तथा परहित के घोड़े सबल हों। इन घोड़ों के संचालन के लिए क्षमाशीलता यानी दूसरों के अपराध को हृदय से माफ कर देना, कृपा यानी दीन-दुःखी पर दया करना और मानव मात्र में समता की चेतना वल्गा का काम करेंगी। वल्गा में तीन गुण चाहिये क्षमाशीलता, कृपा तथा सबमें एक ही परम चैतन्य के दर्शन से उत्पन्न साम्य-भावना—इन्हीं तीन गुणों से इस लगाम की रचना हुई है। राम क्षमाशील हैं। राम कृपालु हैं और राम की दृष्टि में भारत, शूद्र निषाद तथा वनवासी हनुमान—सभी अपने हैं। सभी प्राणियों में साम्यचेतना जाग्रत है। तभी तो तुलसीदास ने 'सियाराम मय सब जगजानी' कहकर सबको नमन किया है। पर ये कभी-कभी भूल गये हैं। राम कभी नहीं भूलते। इसलिए राम के धर्ममय रथ का संचालन, सम्यक् रीति से हो रहा है। उसे विभीषण को समझना है।

ईशभजन, सारथी सुजाना।
विरति चर्म संतोष कृपाना॥

इस रथ का चालक सुजान होना चाहिये। साधारण सारथी न हो। कठोपनिषद के रूपक में बुद्धि सारथी है। महाभारत में श्रीकृष्ण सारथी हैं। राम के धर्ममय रथ का सारथी आस्तिकभाव है। ईशभक्ति याने आस्तिकता ही इस रथ का संचालन कर सकती है। सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त ईश के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा के आधार पर ही धर्ममय रथ का संचालन सम्भव है। हमेशा याद रहे कि जिस पृथ्वी पर यह रथ चल रहा है, उसका अदृश्य चालक यह सर्वव्याप्त परमात्मा तत्व है। इस आस्तिक्य चेतना से ही रथ का सम्यक् संचालन हो सकेगा। नास्तिकता से सम्भव नहीं है। जीवन एवं जगत् में घोर आसक्ति से हम इस युद्ध में प्रहार से अपने को नहीं बचा सकते। आसक्ति के बदले विरति ही ढाल का काम करेगी। विराग भाव ही ढाल बन कर हमारी रक्षा कर सकेगा। आसक्ति तो स्वार्थपूर्ण विलासिता में डुबाकर असुरक्षित कर देगी। संतोषभाव ही कृपाण है। संतोषभाव से हम दूसरों पर विजय पा सकेंगे।

दानपरस, बुधि सक्ति प्रचंडा।
वर विज्ञान कठिन कोदंडा॥

दान देना यानी स्वअर्जित धन के एक अंश को समाज के लिए समर्पण भाव परशु बन कर हमें सशस्त्र बना देगा। त्याग के साथ भोग ईशोपनिषद् का निर्देश है। दान यानी समर्पण भाव परशुराम का परशु बन जाता है। सद्बुद्धि प्रचंड शक्ति के रूप में प्रकट होती है। श्रेष्ठ ज्ञान ही धनुष है। धर्ममय रथ का महारथी श्रेष्ठ ज्ञान के धनुष को धारण कर आगे बढ़ता है।

अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥

निर्मल तथा स्थिर मन तरकस के समान है। चंचल मन यम, नियम, आसन आदि की साधना में असमर्थ हो जाता है। अतः मन को कुप्रवृत्तियों से दूर रखकर निर्मल करना और फिर स्थिर करना आवश्यक है। ऐसा मन तरकस या कोश के समान है जिसमें शम, यम और नियम के वाण रहेंगे। जिनसे युद्ध किया जा सकता है। युद्ध में विजयी होना सम्भव है।

कवच अभेद विप्रगुर पूजा।
एहि सम विजय उपाय न दूजा॥

विद्वान्, गुरु का सम्मान भाव अभेद कवच बन जाता है। कबीर ने गुरु को गोविन्द से श्रेष्ठ बताया है। तुलसी ने विप्र और गुरु दोनों की पूजा की चर्चा की है। ऐसे रथ पर सवार ऐसा रथी ही विजय पा सकता है।

राम कहते हैं जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ है, उसे कौन शत्रु जीतने के लिए निकट आयेगा, शत्रु का लौह रथ तो अधर्ममय है। वह धर्ममय रथ और धर्म के साकार स्वरूप राम को जीत नहीं सकेगा। राम को ही विजय होगी। जहाँ धर्म है, वही विजय है। राम विजयी हुए थे। दशहरा इसी सत्य को उद्घोषित कर रहा है।

---

हमें ऐसे हृदय की आवश्यकता है, जो समुद्र-सा गंभीर और आकाश-सा उदार हो।

हृदय पूर्ण होने पर मुख से शब्द निकलते हैं, हृदय पूर्ण होने पर हाथ भी काम करते हैं।

हमें तीन वस्तुओं की आवश्यकता है : अनुभव करने के लिए हृदय की, कल्पना करने के लिए मस्तिष्क की, और काम करने के लिए हाथ की।

—स्वामी विवेकानन्द

# भगवत्प्रेम (१)

— स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

सच्चा भगवत्प्रेम

कोई भी प्रेम के बिना जीवित नहीं रह सकता। केवल विभिन्न लोगों के प्रेम के पात्र भिन्न-भिन्न होते हैं। हम मान-यश अथवा इन्द्रिय सुखों अथवा भगवान् और दिव्य-आनन्द के पीछे दौड़ते हैं। भगवान् की ओर हमारा यह अग्रसर होना आध्यात्मिक जीवन के सभी स्तरों पर विद्यमान रहता है। भगवान् हममें हैं और हमारे माध्यम से कार्य करते हैं। इस सत्य का अनुभव करते ही हमारा समग्र दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है। लेकिन सर्वप्रथम हमें कम-से-कम कुछ हद तक अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति सजग होना चाहिये क्योंकि हम भगवान् के अंग हैं। आत्मा परमात्मा का एक अविभाज्य अंश है। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"नित्य आत्मा का नित्य परमात्मा के साथ नित्य सम्बन्ध धर्म है।" इसीलिए सत्य की स्पष्ट धारणा साधक के लिए चाहे वह भक्त हो या ज्ञानी हो या योगी हो, इतनी आवश्यक है।

पुरुष अथवा स्त्री के प्रति प्रेम की तरह भगवत्-प्रेम अंधा नहीं होता। वह सदा एक प्रकार की उच्चतर प्रज्ञा पर आधारित होता है। वह प्रेम की सामान्य मान्यता से भिन्न होता है। सामान्यतः हमारा प्रेम नदी की तरह निम्नगामी होता है। भगवान् को प्रेम करना मानो नदी के प्रवाह को उसके उस स्रोत की ओर मोड़ना है, जिस अक्षय स्रोत से मानव-प्रेम की सभी धाराएँ उत्पन्न होती हैं।

जिस मात्रा में हम पवित्र होंगे उसी मात्रा में हम अपने वास्तविक उच्चतर स्वरूप को जान पायेंगे तथा अन्तर्यामी परमात्मा के साथ संपर्क स्थापित कर पायेंगे। इसके लिए हमें अपनी निम्न प्रकृति का अतिक्रमण करना होगा। ज्ञानी पुरुषार्थ की सहायता से मन को नियंत्रित करना चाहता है। भक्त अपनी समस्त भावनाओं को भगवान् में केन्द्रित करता है। ऐकान्तिक भक्ति द्वारा हमारी सभी वासनाएँ भस्म हो जाती हैं। भगवन्-भक्ति भक्तों के जीवन को पवित्र करने का सबसे महान् साधन है।

यही भगवत् प्रेम अन्ततोगत्वा भक्त को भगवान से मिलता है। लेकिन यह भावुक लोगों की भक्ति नहीं है। यह भावुक उच्छ्वास, छिछलापन नहीं है। यह जीव की परमात्मा के लिए तीव्र पिपासा है। समान्यतः हमारी भक्ति में कुछ नित्य और कुछ अनित्य का सम्मिश्रण होता है। वह विशुद्ध प्रेम (भक्ति) नहीं होता। भक्त अपनी अपवित्रता को भगवत् समर्पण द्वारा दूर करना चाहता है, जिससे उसे शुद्ध-भक्ति प्राप्त हो।

हम सर्वदा पूरी तरह ईमानदार नहीं होते। हमारे भगवत् प्रेम में कुछ सच्चाई अवश्य रहती है, लेकिन उसमें कुछ इच्छाएँ भी मिली रहती हैं, वह पूर्ण निष्ठा नहीं होती। साधना में निष्ठा का महत्वपूर्ण स्थान है। कई बार अपने को बहुत निष्ठावान मानकर हम अपने को धोखा देते हैं। एक जर्मन महिला ने एक बार मुझसे कुछ निर्देश

मांगे। वह दुर्बल दिख रही थी। वह हाल ही में बीमारी से ठीक हुई थी और स्वास्थ्य लाभ के लिए अन्य स्थान जाने वाली थी। वह उस समय को ध्यान में बिताना चाहती थी। वह भगवत्साक्षात्कार करना चाहती थी। मैंने उससे कहा कि आध्यात्मिक निर्देश प्राप्त करने के पूर्व उसे अपना स्वास्थ्य सुधार लेना चाहिए। तब उसने पूछा "स्वामीजी, क्या आप मेरी ईमानदारी पर शक करते हैं?" मैंने कहा, "नहीं, मैं शंका नहीं करता लेकिन तुम्हारी ईमानदारी अन्य बातों के साथ मिली हुई है।"

अचानक पैदा होने वाली निष्ठा अल्प-स्थायी होती है। हम बहुत-सी बातें चाहते हैं और भगवान उनमें से एक हैं। प्रारम्भ में हमारा भगवत्प्रेम स्वतः प्रसूत होता है,—सहजात होता है परन्तु हम धीरे-धीरे उस एक (परमात्मा) की सत्ता का अनुभव करने लगते हैं, जो माता, पिता तथा संसार में अन्य सभी वस्तुओं से अधिक प्रिय है। साधना द्वारा चित्तशुद्धि करके हमें भगवान् के प्रति अपने प्रेम के अनुपात को बढ़ाना चाहिये, जो किसी कारण विभिन्न सांसारिक वासनाओं के साथ मिल गया है। हममें पूर्ण ऐकान्तिक प्रेम होना चाहिये। हमारी सभी भावनाएँ भगवान् में केन्द्रित होनी चाहिये तथा अन्य किसी भी वस्तु से मन को भगवान् से विमुख करने तथा हमें उसकी ओर आकृष्ट करने नहीं दिया जाना चाहिये। इस प्रकार अपनी सभी इच्छाओं और वासनाओं को भगवान् की ओर सचेतन प्रयास द्वारा निरन्तर लगाये रखने से हमारी मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ विशुद्ध और उदात्त हो जाती हैं। तब हम जान पाते हैं कि भक्ति क्या है। इस प्रक्रिया द्वारा एकाग्र किन्तु अपरिशुद्ध भावनाओं और मनोवृत्तियों के रूप योग साधना के साथ जुड़े हुए महान खतरे से भी बचा जा सकता है।

हम भोजन, मित्र, धन, संपत्ति से प्यार करते हैं। लेकिन यह प्रेम हमारे क्षुद्र 'अहं' में केन्द्रित है। यह अहंकार समस्याएँ पैदा करता है, और सभी दुःखों का कारण है। एक सरल-हृदय ग्रामीण को अपनी पत्नी को त्यागने के आरोप में न्यायाधीश के सामने पेश किया गया। उसने प्रतिवाद करते हुए कहा, "महामहिम, मैंने पत्नी का त्याग नहीं किया है, उल्टे मैं शरणार्थी हूँ।" मानवी प्रेम प्रायः घोर स्वार्थपरक सिद्ध होता है।

जरा इसकी तुलना श्रीरामकृष्ण और उनके शिष्यों के सम्बन्ध से करो। उस प्रेम की गहराई और शुद्धता का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। नरेन्द्र नाथ (जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्व विख्यात हुए) श्रीरामकृष्ण के प्रमुख शिष्य थे। श्रीरामकृष्ण उन्हें बहुत प्यार करते थे जो अनेक प्रकार से अभिव्यक्त होता था। उनके दर्शन मात्र से वे भावविह्वल हो जाते थे। लेकिन एक बार श्रीरामकृष्ण ने अपने इस शिष्य की कठिन परीक्षा ली। अचानक उन्होंने उसकी पूरी तरह उपेक्षा करना प्रारंभ कर दिया। नरेन्द्र के आकर प्रणाम करने पर श्रीरामकृष्ण चुप हो जाते लेकिन उनके कमरे से बाहर जाने पर दूसरों से बातचीत करने लग जाते। श्रीरामकृष्ण ने उपेक्षा का यह भाव कई सप्ताहों तक बनाये रखा लेकिन इस दौरान नरेन्द्र, पूर्ववत उनके पास आते जाते रहे। एक महीने के बाद श्रीरामकृष्ण ने युवक-शिष्य से पूछा, "मैं तुम से एक शब्द भी नहीं बोलता, फिर भी तुम आते हो। क्या बात है? नरेन्द्र ने उत्तर दिया, "क्या आप सोचते हैं कि मैं केवल आपकी बातें सुनने यहाँ आता हूँ। मैं आपसे प्रेम करता हूँ और आपके दर्शन करना

चाहता हूँ। इसलिए आता हूँ।".....यह निःस्वार्थ प्रेम है।

एक बार नरेन्द्र ने स्वयं श्रीरामकृष्ण से कहा कि वे उसके प्रति आसक्त न होवें। यह सुनकर बाल-स्वभाव श्रीरामकृष्ण तत्काल माँ जगदम्बा की राय जानने काली मन्दिर पहुँचे माँ जगदम्बा ने उनके सामने यह सत्य उद्घाटित किया कि वे अपने युवा-शिष्य के भीतर भगवान् का दर्शन करते हैं, इसलिए उससे प्रेम करते हैं। जिस दिन वे ऐसा नहीं करेंगे, उस दिन उनके लिए उसको देखना भी संभव नहीं होगा। श्रीरामकृष्ण का शिष्यों के प्रति प्रेम सामान्य प्रेम नहीं था। वह सर्व-व्यापी परमात्मा की अपरोक्ष-अनुभूति पर आधारित आध्यात्मिक सम्बन्ध था। ऐसे प्रेम में आकर्षण का केन्द्र क्षुद्र अहंकार नहीं, बल्कि परमात्मा होता है।

श्री चैतन्य के जीवन में भी ऐसी एक घटना का वर्णन है। पुरी में निवास करते समय एक बार वे एक निम्न जाति के भक्त का आलिंगन करना चाहते थे। वह व्यक्ति भयभीत हो दूर हटकर कहने लगा, "प्रभु मैं नीच जाति का हूँ, मुझे स्पर्श न करें।" श्रीचैतन्य ने उत्तर दिया, "तुम यह क्या कहते हो? तुम्हारे स्पर्श से मैं स्वयं पवित्र हो गया हूँ।" देव-मानव सर्वत्र सर्वव्यापी परमात्मा की सत्ता का अनुभव करते हैं। उनके लिए ऊँची और नीची जाति, धनी-निर्धन का अन्तर नहीं होता

## विभिन्न प्रकार के भाव

गीता में कहा गया है कि आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी, ये चार प्रकार के लोग भगवान् की आराधना करते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि ये सभी प्रशंसनीय हैं, लेकिन चतुर्थ, अर्थात् ज्ञानी भगवान् को सबसे अधिक प्रिय है। (श्रीमद् भगवद्गीता, ७; १६-१८) इस महत्त्वपूर्ण वक्तव्य का क्या अर्थ है? ज्ञानी परमात्मा का प्राणियों में दर्शन करता है, तथा उनके साथ नित्य-युक्त रहता है। वह स्वयं अथवा दूसरों के अशुभ से अप्रभावित रहता है। औपनिषदिक ऋषियों को यह अनुभूति हुई थी। उनमें से एक कहते हैं:

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि
विश्वतोमुखः॥

श्वेताश्वतर उपनिषद् ४: ३

अर्थात् तुम स्त्री हो, तुम पुरुष हो, तुम कुमार हो, तुम कुमारी भी हो। तुम दण्ड के सहारे चल रहे वृद्ध हो, तुम अनेक रूपों को धारण करते हो।

यौवन में साधक के रूप में स्वामी विवेकानन्द निरन्तर समाधि में मग्न रहना चाहते थे। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने उन्हें कहा कि उससे भी ऊँची एक स्थिति है अर्थात् परमात्मा का समस्त प्राणियों में दर्शन करना। अवश्य यह एक बहुत उच्च आदर्श है।

लोग अनेक प्रकार के होते हैं। जीवन तथा ईश्वर के प्रति उनके दृष्टिकोणों में बहुत पार्थक्य होता है।

१. एक संसारी लोग सामान्यतः भगवान् की जरा भी फिक्र नहीं करते, वे सांसारिक एवं वैषयिक सुखों के लिए अत्यधिक लालायित रहते हैं और दुःखों से बहुत डरते हैं।

२. एक अन्य प्रकार के संसारी लोग भगवान् का चिन्तन करते हैं, लेकिन उन्हें अधिकतर वरदाता, भौतिक संपत्ति और सुख प्रदाता ही मानते हैं। उन्हें भी बहुत सुखाभिलाषा होती है तथा वे संसार के दुःखों से डरते हैं।

३. कुछ आंशिक रूप से संसारी और आध्यात्मिक भावापन्न लोग भगवान् की उपासना करते हुए भी सांसारिक सुखों में अत्यधिक आसक्त रहते हैं। वे दुःखों का अनुभव करते हुए भी अप्रिय को प्रिय समझने का प्रयत्न करते हैं।

४. कुछ यथार्थवादी लोग भगवान् की परवाह किये बिना जीवन के सुख और दुःख को अपरिहार्य मानकर वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में स्वीकार करते हैं।

५. कुछ अध्यात्मप्रवण लोग जीवन के सुख-दुखों को अपने शुभाशुभ कार्यों का परिणाम मानकर शान्तिपूर्वक स्वीकार करते हैं और यथासाध्य अच्छा जीवन यापन करने का प्रयत्न करते हैं।

६. अन्य लोग सब कुछ को भगवान का दिया हुआ मानकर यथासंभव धर्म और कर्त्तव्य के पथ का अनुसरण करते हुए अविचलित और सन्तुष्ट बने रहने का प्रयत्न करते हैं।

७ अन्य लोग सुख-दुःख को अपने कर्मों के दण्ड अथवा पुरस्कार के रूप में ही नहीं, बल्कि लौकिक अस्तित्व के अपरिहार्य द्वन्द्व के रूप में देखते हैं। वे अनासक्ति, पवित्रता, कर्त्तव्य पालन, निष्काम सेवा और साधना का जीवन यापन करने का प्रयत्न करते हैं और उस परमात्मा को पाने का प्रयत्न करते हैं जो सभी सापेक्ष शुभाशुभ से परे हैं। सांसारिक सुखों की तरह सांसारिक दुःखों में भी वे सन्तुलन बनाये रखते हैं और द्वन्द्वों से विचलित अथवा पथभ्रष्ट हुए बिना उच्चतर जीवन यापन करने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

एक प्रकार के प्रेम में प्रेमी केवल अपने सुख की चिन्ता करती अथवा करता है। दूसरे प्रकार के प्रेम में आदान-प्रदान लेन-देन का भाव रहता है—दोनों प्रेमी एक-दूसरे की सुख की चिन्ता करते हैं। एक तीसरे प्रकार का प्रेम है, जिसमें प्रेमी अपने सुख की चिन्ता करता ही नहीं है। उसका समग्र मन प्रेमास्पद के सुख में लगा रहता है।

यदि भगवत् प्रेम में हमें शक्ति और आनन्द प्राप्त न हो तो हमारे इस प्रेम में कुछ-कुछ त्रुटि है। सांसारिक वासनाओं से रहित विशुद्ध प्रेम हमें बहुत आनन्द और पूर्णता अवश्य प्रदान करेगा। भगवान् प्रायः हमारी आसक्तियों की वस्तुओं को छीन लेते हैं, जिससे हम उनसे शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम कर सकें। आध्यात्मिक जीवन मौलिक स्तर पर कई बार दारिद्रय और दुःख पूर्ण होता है, लेकिन विशुद्ध प्रेम और उसके माध्यम से परमानन्द प्राप्त करने के लिए ये सारी बातें प्रायः आवश्यक होती हैं। भगवान हमारी सबसे बड़ी संपत्ति है और उसका संचयन करने के लिए काँच के दाने और गोटा आदि फेंकना पड़ता है।

## भगवत् प्रेम की शक्ति

ईश्वरीय शक्ति की धारणा केवल जगत् की सृष्टि-स्थिति और लय के रूप में ही मत करो। भगवत् प्रेम ईश्वरीय ज्ञान के द्वारा प्राप्त शक्ति के बारे में सोचो। शक्ति शारीरिक मानसिक अथवा आध्यात्मिक हो सकती है। सभी प्रकार की शक्तियों के आदि कारण, माँ जगदम्बा से प्रार्थना करो। माँ जगदम्बा की भक्ति से असीम शक्ति प्राप्त होती है। तुम उनके हाथों में यन्त्र मात्र हो। लेकिन यन्त्र भी कार्यरत होता है और याद रखो, यन्त्र के रूप में तुम्हारी शक्ति असीम है।

जिस प्रकार जगदम्बा तुम में विद्यमान हैं, उसी तरह वह सभी में विद्यमान हैं। इस तरह

सोचो, अन्यथा आज जो प्रेम है, वही कल घृणा में परिणत हो जायेगा। हमारा प्रेम घृणा से सम्बन्धित रहता है। वह प्रेम के लिए प्रेम होना चाहिये। यदि यह भाव बनाये रखना संभव न हो तो प्रारंभ में हमें कम-से-कम परस्पर प्रेम के लेन-देन का भाव रखना चाहिये। उसके बाद एक स्थिति आयेगी, जब तुम जितना पाओगे उससे अधिक देना चाहोगे। उच्चतम अवस्था वह है, जब व्यक्ति अपने बारे में सोचना तक नहीं वह प्रतिदान की अपेक्षा किये बिना दिया ही जाता है।

अभी हमारा प्रेम स्वार्थयुक्त है। क्या तुम "आधा-आधा" की कहानी जानते हो? एक होटल खरगोश के मांस के कबाब के लिए प्रसिद्ध थी। एक दिन एक ग्राहक को स्वाद में अन्तर प्रतीत हुआ। पुलिस को सूचना दी गई। होटल मालकिन ने कहा, "महाशय, मैं क्या करूँ, खरगोश का मांस मिलना मुश्किल हो गया है। अतः मैंने थोड़ा-सा घोड़े का मांस मिला दिया।" "किस अनुपात में?" पुलिस ने पूछा। उसने कहा, "आधा-आधा" याने एक खरगोश के साथ एक घोड़े का। हमारा दूसरों के प्रति प्रेम एक खरगोश के वजन का होता है और स्वयं के प्रति प्रेम एक घोड़े के वजन का सा—सचमुच आधा-आधा। लोग और हम भी विश्वसनीय नहीं हैं। प्रेम के अनन्त स्रोत के निकट जाओ। उस विशुद्ध प्रेम की एक बूंद हम प्राप्त करते हैं। वह स्वार्थपरता से अत्यधिक अपमिश्रित हो जाता है। उसे शुद्ध करो। सभी में आत्म प्रेम है। उसे उदात्त कैसे करना, यही समस्या है। विज्ञान में विशुद्धीकरण की प्रक्रिया उदात्तीकरण कहलाती है। ईसाई उसे 'परगेशन' कहते हैं। अपने प्रेम को शुद्ध करना—यह हमारे जीवन का प्रस्तुत कार्य है।

अपने भगवत्-प्रेम को, परमात्मा के प्रति प्रेम को बढ़ाओ। तब दूसरों के प्रति प्रेम बढ़ेगा। हम सभी माँ जगदम्बा के माध्यम से सम्बन्धित हैं। सर्वप्रथम वैयक्तिक प्रेम होता है। उसके बाद हमारा अनुभव करते हैं कि हम अनन्त-परमात्मा के अंश, आत्मा हैं। तब हमारा दूसरों के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित होता है मानव-प्रेम का स्थान आध्यात्मिक-बन्धुत्व ले लेता है। आसक्ति के स्थान पर स्वाधीनता आ जाती है। स्वार्थपरता का स्थान सेवा ले लेती है। दूसरे प्रेम को बढ़ाओ, इसे दूसरों को दो, दूसरों को सम्मान प्रदान करो। सभी में विद्यमान परमात्मा का चिन्तन करो। पारिवारिक प्रेम अथवा मित्रों का प्रेम स्वार्थपूर्ण होता है। जानो कि यह प्रेम भगवान् से संबंधित असीम प्रेम का एक बिन्दु मात्र है। इसे भगवत्-प्रेम से संयुक्त करने का प्रयत्न करो। अपनी दैनन्दिन साधना के बाद माता, पिता, संबंधियों, मित्रों और विद्वेषियों में भी भगवान् को प्रणाम करो। सभी को निःस्वार्थ रूप से प्रेम करने का प्रयत्न करो।

हमें चेतन्य के उस स्तर पर उठने का प्रयत्न करना चाहिये जो शुभाशुभ इच्छाओं और मनोभावों से परे हैं। सदा याद रखो कि शुभ-भावनाओं से अशुभ भावनाओं के स्तर पर आने में देर नहीं लगती। अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखो और उन्हें आध्यात्मिक दिशा प्रदान करना सीखो। दूसरे व्यक्ति के प्रति अपने प्रेम को मौलिक-स्तर पर व्यक्त करते समय सावधान रहो। यदि तुम किसी व्यक्ति से सचमुच प्रेम करते हो तो तुम्हें उसकी अनासक्त होकर सेवा करने का प्रयास करना चाहिये। यदि ऐसा न कर सको तो दूर हो जाओ और उसके लिये प्रार्थना करो। जिन साधकों की कुछ चित्तशुद्धि हो चुकी है, उन्हें अपनी इच्छाओं और कामनाओं को बाहर प्रकट करने में विशेष सावधानी बरतनी चाहिये।

उन्हें कोमल भावनाओं और मनोभावों के विषय में अत्यधिक सतर्क होना चाहिये।

मन पर सतत निगरानी बनाये रखना चाहिये। यदि वह दैनन्दिन जीवन की छोटी-छोटी बातों में लापरवाह होगा तो वह ध्यान में भी लापरवाही बरतेगा। ध्यान के लिए बैठने पर हमें कोई नया मन नहीं मिल जाता। वह वही पुराना मन ही रहता है, और यदि वह दूसरे समय भटकने का अभ्यस्त हो गया हो तो यह कैसे अपेक्षा की जा सकती है कि वह ध्यान के समय शान्त होगा? जिस मात्रा में हम भगवान् को प्रेम करने में तथा उनकी सेवा में रुचि का अनुभव करेंगे, उसी मात्रा में हमारी साधना में अधिकाधिक स्थिरता आयेगी और वह फल-प्रद होगी।

कर्मनिरत रहते हुए भी मन सांसारिक वस्तुओं की ओर धावित हो, उस समय भी किसी-न-किसी प्रकार, चोरी-छुपे, भगवान को भीतर प्रविष्ट करो। केवल भगवत्-प्रेम को ही प्रोत्साहित करना चाहिये और यह सतत् अभ्यास द्वारा किया जा सकता है। मन के अधिकांश भाग को, जितना वह अभी है, उससे अधिक सजग, अधिक जाग्रत करना चाहिये। प्रभु को अपने जीवन का ध्रुवतारा बना लो।

जो व्यक्ति भगवानन् को प्रेम नहीं करता, वह वस्तुतः आध्यात्मिक जीवन यापन नहीं कर सकता। आध्यात्मिक जीवन की सबसे महान बात हमारे मानवी प्रेम को भगवत् प्रेम में रूपान्तरित करना है। निकृष्टतम आसक्ति के मूल में भी विशुद्ध प्रेम रहता है। बुराई के भस्म होने पर विशुद्ध प्रेम बचा रहता है।

यह निश्चित रूप से जानो कि यदि किसी कारणवश कोई मानव तुम्हें त्याग दे, तो भी भगवान् ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि जैसा श्रीकृष्ण ने कहा है, हम भगवान् के नित्य-अंश स्वरूप हैं। (श्रीमद् भगवद् गीता १५ : ७) अपने समग्र प्रेम को भगवान् की ओर मोड़ दो, और भगवत्-प्रेम के माध्यम से दूसरों को प्रेम करना सीखो। अर्थात् दूसरों को व्यक्तिगत रूप से प्रेम मत करो, लेकिन भगवान् के लिए तथा भगवान के माध्यम से प्रेम करना सीखो। दूसरों के प्रति हमारे प्रेम में भगवान् के मानवों के प्रति पवित्र प्रेम का कुछ अंश होना चाहिये।

## ईश्वराभिमुखीकरण

अहंकार बारबार सर उठाता है। अतः श्रीरामकृष्ण कहते हैं, उसे भगवान् का दास बनाओ। (श्रीरामकृष्ण वचनामृत' रामकृष्ण मठ; नागपुर, प्रथम भाग) इच्छाएँ और वासनाएँ नियंत्रित नहीं होना चाहतीं। उनकी तीव्रता बनाये रखकर उन्हें ईश्वर की ओर मोड़ दो। स्त्री-पुरुषों के संग की लालसा के बदले, भगवान से मिलन की लालसा करो। उनके दर्शन से ही जीव की क्षुधा मिट सकती है। वे ही जीव की रिक्तता को भर कर उसे स्थायी शान्ति और आनन्द प्रदान कर सकते हैं।

तुम्हारे स्थूल और सूक्ष्म विषय-सुखों की बाधाओं के प्रति क्रुद्ध होने के बदले भगवत् प्राप्ति की बाधाओं से क्रुद्ध होओ। अपनी अशुभ इच्छाओं, उच्छृंखल वासनाओं और क्रोध पर ही क्रुद्ध होओ, और उन सबसे अपने महान निष्ठुर शत्रुओं की तरह दूर रहो। दूसरे किसी मानवी पुतले अथवा क्षणस्थायी सांसारिक संपत्ति के लोभ के बदले भगवान तथा उनकी अक्षय आध्यात्मिक संपत्ति की कामना करो, जो कभी नष्ट नहीं होती तथा जिसके द्वारा ही स्थायी शान्ति मिल सकती है। श्रीमद् भागवत् में कहा गया है; काम, क्रोध, भय, स्नेह, मित्रता और आत्मीयता को

भगवान् की ओर मोड़ने पर भगवत् साक्षात्कार होता है। (श्रीमद् भागवतम् १० : २९.१५) पारस के स्पर्श से सभी इच्छाओं, वासनाओं, लोभ और रूपी निम्न/धातुएँ अपना अशुभ स्वभाव त्याग कर जीव को आनन्द व अमरत्व प्रदान करने वाली शुद्ध-भक्ति में रूपान्तरित हो जाती है। श्रीकृष्ण ने भगवद् गीता में घोषणा की है : "यदि कोई अति दुराचारी व्यक्ति भी अनन्य भाव से मेरी आराधना करता है, तो उसे साधु ही समझना चाहिये क्योंकि उसने शुभ निर्णय ही किया है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और शाश्वत् शान्ति प्राप्त करता है। हे कौन्तेय, यह दृढ़ता पूर्वक जानो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नही होता। (गीता, ९ : ३०.३१)।

यह संभव है कि कोई व्यक्ति वासनाओं के बुरे परिणामों के बारे में भली-भाँति जानता हो, लेकिन फिर भी वह उनसे अपने को पूरी तरह दूर रखने में समर्थ न हो पाया हो। ऐसे व्यक्ति को क्या करना चाहिये ? वह उनके ऊपर कैसे उठ सकता है ? इच्छा शक्ति की सहायता से उन्हें नियंत्रित करना एक उपाय है। उनके प्रति साक्षी भाव का विकास करना दूसरा उपाय है। दोनों ही आसान नहीं हैं और साधना के प्रारंभिक काल में तो लगभग असंभव ही हैं। तब फिर साधक के लिए क्या उपाय है ? उसे उन सभी को अपरोक्ष या परोक्ष रूप से उन्हें परमात्मा के साथ जोड़ देना चाहिये। प्रत्येक इच्छा, प्रत्येक वैषयिक आवेग, प्रत्येक वासना को सचेतन तथा संज्ञारूप से इच्छाशक्ति की सहायता से ईश्वराभिमुखी करना चाहिये। यदि उसकी कलाप्रवणता तथा कला का आनन्द उपभोग करने की इच्छा बहुत प्रबल हो तो उसे किसी धार्मिक कला पद्धति को स्वीकार कर उसके द्वारा परमात्मा तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये। लेकिन संगीत के बदले भक्ति-संगीत का श्रवण करना चाहिये। दूसरों के लिए गाने के बदले भगवान् के लिए गाना चाहिये, इत्यादि। यदि उसे मीठी सुगन्ध बहुत प्रिय हो और वह पुष्पों के सौंदर्य का उपभोग करना चाहता है, तो पुष्प तोड़ कर उन्हें भगवान् को अर्पित करे तथा उनसे भगवान् की वेदी का कलात्मक शृंगार करे। यदि वह किसी व्यक्ति से प्यार करना चाहता है अथवा किसी के प्रति बहुत आकर्षित हो रहा हो, तो उस व्यक्ति में परमात्मा को प्रेम करे, और इस प्रकार सीधे परमात्मा की ओर अग्रसर होवे।

सोच समझकर तथा सचेतन रूप से किये जाने पर ये सारे कार्य महान संयम और नियंत्रण कारक सिद्ध होते हैं तथा हमारी इच्छाओं के उदात्तीकरण में, उन्हें उच्चतर दिशा प्रदान करने में तथा और अधिक पवित्रता अर्जन करने में सहायक होते हैं। लेकिन यहाँ भी साधक का प्रापणीय चरम लक्ष्य मन का पूर्ण नियंत्रण और भगवद् साक्षात्कार ही है। अन्य सभी साधन उसकी प्राप्ति के सोपान मात्र हैं। इस क्रमिक पथ का अवलंबन कर आगे या पीछे हमें विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम की उच्चतम अवस्था तक आरोहण करने में समर्थ होना होगा।

सभी बाह्य पदार्थों के साथ अपने संबंध को ईश्वराभिमुखी करना चाहिये। परमात्मा सर्वत्र तथा सभी में हैं, लेकिन इसे अनुभव करने के लिए हमें अधिक सजग और सचेत होना होगा। हमें अपनी इन्द्रियों एवं शुभ अथवा अशुभ सहजात प्रवृत्तियों के आवेशों के द्वारा कम परिचालित होना चाहिये तथा अधिक चिंतनशील होना चाहिये। हम इन सभी बातों में इतने लापरवाह और आलसी हैं, कि हम इसके विपरीत मार्ग को स्वीकार कर स्वयं अनन्त कष्ट भोगते हैं।

सभी जीवों में एक ही परमात्मा विद्यमान है, इस सिद्धान्त को हमें भलीभाँति हृदयंगम करना चाहिये। अभी हम उसे आधे मन से स्वीकार करते हैं और वस्तुतः सच्चे वैराग्य और अनासक्ति के बिना उसे पूरी तरह स्वीकार करना और उसके अनुरुप कार्य करना संभव भी नहीं है। यदि हमें दृढ़ निश्चय हो जाये कि सभी में एक अखंड सत्ता विद्यमान है, तो किसी व्यक्ति विशेष के प्रति तीव्र घृणा अथवा प्रबल-पाशविक-प्रेम होना संभव नहीं है। तब हम उस पुरुष अथवा स्त्री की पृष्ठभूमि में विद्यमान सत्ता की ओर ही अपनी दृष्टि रखेंगे। इसका अर्थ यह नहीं कि हम मूर्खों सा आचरण करें और अपने संग के सम्बन्ध में विवेकहीन हो जावें। नहीं। एक अखंड सत्ता की अभिव्यक्ति होते हुए भी हमें शेर को शेर ही समझना चाहिये और उसे आलिंगन करने नहीं जाना चाहिये। हमें सभी स्त्री-पुरुषों में विद्यमान परमात्म सत्ता को पहचानना चाहिये, लेकिन जबतक हम लौकिक व्यावहारिक स्तर पर हैं तबतक यह ज्ञान हमारे विवेक और सावधानी बरतने में बाधक सिद्ध नहीं होना चाहिये। अपवित्र और अनैतिक आचरण कर रहे सांसारिक व्यक्ति की पृष्ठभूमि में विद्यमान एक सत्ता को देखना चाहिये लेकिन उसके साथ घनिष्ट वार्तालाप नहीं करना चाहिये। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यदि हम इस नियम का पालन न करें, तो किसी-न-किसी दिन हमारा पैर फिसलेगा और हम अवश्य कष्ट भोगेंगे। इस विषय में साधक जितना सतर्क हो उतना कम है। जिस मात्रा में हम सर्वव्यापी एक अखंड सत्ता को स्वीकार करेंगे, उसी मात्रा में हमारी घृणा, तथाकथित मानवी प्रेम, आसक्ति, कम होंगे तथा शक्ति हीन और प्रभावहीन होंगे। जहाँ भी हम किसी साधक में सांसारिक लोगों तथा विपरीत लिंग के व्यक्तियों से बिना विचारे मिलने-जुलने की इच्छा पायें, तो हमें समझ लेना चाहिये कि उसमें कोई बड़ी त्रुटि है। सांसारिक वस्तुओं और भोगों की उसकी इच्छाओं का प्रबल प्रभाव अभी कम नहीं हुआ है, चित्तशुद्धि नहीं हुई है तथा आध्यात्मिक साधना और प्रगति का उसके लिए कोई प्रश्न ही नहीं है।

सामान्यतः हमारी आसक्ति हमारी समग्र बुद्धि को धूमिल बना देती है। हमें रूप, व्यक्तित्व और इन्द्रिय विषयों के बदले आत्मा को अधिक महत्व देने में समर्थ होना चाहिये। लेकिन जबतक विषयसुख की लालसा, इस क्षुद्र व्यक्तित्व से हमारा लगाव, हमारी बुद्धि को आवृत किये हुए हैं, तबतक हम वस्तुतः एक अखंड सत्ता का ठीक-ठीक चिन्तन कर ही नहीं सकते और इसलिए हम उन्हीं पुरानी गलतियों को बार-बार दुहराते जाते हैं। अतः सभी साधकों को यथासंभव वैराग्य की वृद्धि करनी चाहिये। उसके बिना कुछ भी ठोस उपलब्धि नहीं हो सकती।

वैराग्य के निषेधात्मक और विधेयात्मक दोनों पक्ष हैं। हमें यथासंभव दूसरों से असंपृक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये और तब परमात्मा के साथ संयुक्त होना चाहिये, जिससे बाद में दूसरों के साथ सम्बन्ध पुनः कभी सीधे न होकर परमात्मा के माध्यम से होवे। मानवी प्रेम को परमात्मा के साथ जोड़ देने से उसका धीरे-धीरे रूपान्तरण किया जा सकता है, लेकिन ऐसा न करने पर वह अपभ्रष्ट हो जाता है और अन्त में दुखदायी होता है। हमारे सभी सीधे सम्बन्ध देह-जनित होते हैं और दूसरों के साथ देह के माध्यम से ही बने रहते हैं। इनमें कुछ स्थायी नहीं होता, जो किसी को भी वास्तविक शान्ति और आनन्द प्रदान कर सके।

सामान्यतः हमारा अपनी देह, इन्द्रियों तथा वासनाओं के साथ इतना प्रबल तादात्म्य रहता है कि हम भगवान् को दूर हटा देते हैं। जिस व्यक्ति में भी परमात्मा के विषय में संशय होता है, वहीं, अहंकार, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय विषयों के प्रति अस्वाभाविक आसक्ति रहती है, जिसके कारण भगवान् दूर हो जाता है। जबतक व्यक्ति में अहंकार और दंभ विषय-भोगों और भोग्य पदार्थों की लालसा भरी पड़ी हों, तब तक उसके जीवन में भगवान् के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। मन के इच्छाओं और वासनाओं से पूरी तरह मुक्त होने पर भगवत् साक्षात्कार तत्काल हो जाता है। अतः यदि हमें भगवत् साक्षात्कार नहीं होता, यदि हमें सत्य की एक झलक नहीं मिलती, तो इसके कारण के विषय में प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं है। हमें यह जानना चहिये कि हमारे मन में सचेतन और अवचेतन भागों में अभी भी प्रबल वासनाएँ विद्यमान हैं और सर्वप्रथम इन बाधाओं को दूर करना चाहिये। जबतक हम इन्हें बने रहने देंगे, तब तक भगवत साक्षात्कार का प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

हमें अपने ऊपर विद्यमान आवेगों/मनोवेगों के प्रभुत्व को नष्ट कर देना चाहिये। ज्योंही मनोवेग उठें, त्योंही अपनी चेतना को व्यापक करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से सागर में लहर की तरह ये मनोवेग तत्काल विलीन हो जाते हैं। जो व्यक्ति अपनी चेतना को विस्तारित करना, उच्चतर प्रकार की चेतना अर्जित करना जानता है, वह अपने मन में उठ रहे इन आवेगों से प्रभावित नहीं होता। अपने आवेगों से ऊपर उठने का एक बहुत प्रभावशाली उपाय परमात्म चेतना से, उस अनन्त सत्ता से सम्पर्क स्थापित करना है, जो सत्ता हममें विद्यमान है और तब अपने सभी विचारों को उससे ही जोड़े रखना चाहिये।

♣

# विज्ञान एवं मानव मूल्य (५)

—स्वामी रंगनाथानन्द
उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं मिशन

### (६) समस्त मूल्य आध्यात्मिक विकास के उपफल

धर्म का विज्ञान प्रश्न करता है क्या आप आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हो गये हैं। लोग मंदिर, गिरिजाघर या मस्जिद जाते हैं। वे वहाँ प्रार्थना करते हैं या अनुष्ठान करते हैं। इनका स्वागत है, बशर्ते वे यह प्रश्न करें और सकारात्मक उत्तर पायें : क्या इससे मैं आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हुआ हूँ। सभी मूल्य आध्यात्मिक विकास के उपफल के रूप में उन्मीलित होते हैं। यह एक वह पाठ है जिसे हमें आज सीखना है। धर्म के नाम से आप जो भी कुछ करते हैं उसका परिणाम आपका आध्यात्मिक विकास होना चाहिये। धर्म केवल तभी प्रामाणिक है जब वह हमें अपने कार्य को सेवा और समर्पण की भावना से करना सिखाए। जब आप एक पौधा लगाते हैं तो उसमें आप पानी देते हैं, खाद देते हैं और चौकसी करते

हैं, आप पौधे को बढ़ता हुआ देखना चाहते हैं। पहले इसमें दो पत्ते थे, अब इसमें चार हैं, बस, उसके बाद शाखाएँ और अन्त में फूल तथा फल। यह कृषि का विज्ञान, पादप विकास का विज्ञान कहलाता है। मनुष्य और उसके धर्म के संबंध में व्यापक स्तर पर हमने इस सत्य को कभी नहीं समझा या प्रयोग किया। अपने धार्मिक जीवन के पहले दिन हम में दो पत्तियाँ हैं, धर्म के पचास वर्ष बाद भी वे ही दो पत्तियाँ। उनमें कोई विकास नहीं हुआ है। वहाँ धर्म का कोई विज्ञान नहीं है, कोई विकास नहीं है। आध्यात्मिक विकास का यह एक विचार धर्म की हमारी अवधारणा एवं साधना को बिल्कुल बदल देगा, हमारे चरित्र एवं मानवीय सम्बन्धों को आंदोलित कर देगा तथा गरीबी एवं पिछड़ेपन को दूर करने तथा हमारे महान देश में एक स्वस्थ सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था लाने की हमें शक्ति प्रदान करेगा।

इन दो विषयों के साथ-साथ आने का यही महत्व है, गरीबी हटाने तथा हमारे लाखों देश-वासियों को मानव महिमा पर उठाने के लिए हमें भौतिक विज्ञान अवश्य चाहिए। परन्तु इस विज्ञान को मानव विकास के लिए प्रयोग करने हेतु, हमें उच्च चरित्र की आवश्यकता है। बिना चारित्रिक ऊर्जा के कोई भी ऊर्जा फलीभूत नहीं होगी। एक के बाद एक हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ हैं। हम अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में केवल दो ऊर्जा मदों पर जोर देते हैं—एक है धन तथा दूसरी है तकनीकी जनशक्ति। बड़ी सावधानी से दोनों की गणना की जाती है तथा प्रदान कर दी जाती है। तीसरा ऊर्जा स्रोत अर्थात चारित्रिक ऊर्जा के सम्बन्ध में क्या है उसकी हम सरलता से उपेक्षा कर देते हैं। परन्तु यह तीसरा ऊर्जा स्रोत ही है जो अन्य दो ऊर्जाओं के प्रभावी विकास कार्य को नियन्त्रित करता है। परिणाम यह होता है एक हजार रुपये से केवल एक सौ रुपये के मूल्य का विकास होता है। शेष विकास मानव यन्त्रों की स्ववेन्द्रीयता रूपी चूहे के बिलों से बाहर चला जाता है। यहां आप इंद्रिय स्तर पर अवरुद्ध मानव जीवन के दुष्परिणामों को देखते हैं। यह आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित नहीं हुआ। यह चतुर्दिक मानवता कि लिए आशीर्वाद नहीं बना है। भौतिक विज्ञान के विषय के साथ मानव मूल्यों के विषय को जोड़ने का यही महत्व है।

पश्चिम में, अब सोवियत रूस में भी, जहाँ अध्यात्म के विषय पर गंभीरता से विचार करना प्रारम्भ हुआ है, वे मानव मूल्यों पर बल देने की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। पश्चिम में, युद्धोपरांत गत लगभग पचास वर्षों से इन पर बहुत कम बल दिया गया है। यदि कभी आप इस विषय पर बोलते हैं, लोग प्रश्न करते हैं, ये मानव मूल्य क्या है? हम इन्हें कहाँ खोजें? इनका विकास कैसे करें? इस विषय का गहन अध्ययन उपनिषदों में किया गया है, और फिर बुद्ध के उपदेशों में, उसी प्रकार गीता में भी और अन्त में आज स्वामी विवेकानन्द में। आज हमें व्यापक स्तर पर इसकी आवश्यकता है।

यदि किसी को इस विषय में शिक्षित करना है, तो उसे अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना है, उस स्त्री या पुरुष को सब कुछ भारत में ही प्राप्त हो जायगा। भारत का महान दर्शन, वेदांत तकनीकी दृष्टि से योग्य प्रचण्ड जनशक्ति को भारत के लिए वरदान के रूप में रूपान्तरित करने में सहायक होगा।

### (७) प्रदीप्त नागरिक के रूप में गृहस्थ की श्रेष्ठता

हमारे यहाँ गृहस्थ की अवधारणा है। गृहस्थ शब्द के मौलिक अर्थ ने इस विस्तार एवं आध्यात्मिक विकास पर बल दिया। गृह या घर में रहते

हुए भी पुरुष या स्त्री घर में जकड़ा हुआ या आबद्ध नहीं है, वह चतुर्दिक मानवता के लिये भी जीता है। गृहस्थ शब्द का यही सच्चा अर्थ है। यदि आप घर में रहते हैं, और अन्य लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार के दौरान उसमें उन्मुक्त भाव से आते जाते नहीं हैं, तब घर एक जेल हो जाता है। इस प्रकार व्यक्ति अपने शरीर को दूसरों की सेवा और प्रेम के द्वारा अपने स्वतन्त्र विकास हेतु अपने शरीर को अपनी कार्यस्थली बनाने के स्थान पर वह उसे एक जेल में परिणत कर देता है। शरीर का उपयोग व्यक्ति के स्वयं की उन्नति एवं विकास तथा दूसरों की सेवा की कार्यस्थली के रूप में करना है। गृहस्थ शब्द में भारत का यही आशय था। मनुस्मृति समाज में चार आश्रमों अर्थात—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में से गृहस्थ को श्रेष्ठतम आश्रम बतलाती है। (३·७८)

यस्माद् त्रयोऽप्याश्रमिणो

ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्

गृहस्थेनैव धार्यन्ते

तस्माद् ज्येष्ठाश्रमी गृही।

क्योंकि गृहस्थ स्त्री या पुरुष अपने परिश्रम द्वारा ज्ञान एवं अन्न से अन्य तीन आश्रमों का पालन पोषण करता है, इसलिए गृहस्थ आश्रम सर्वोत्तम आश्रम है। गृहस्थ स्त्री या पुरुष अपने उत्पादनशील कार्य द्वारा सम्पूर्ण समाज को पालन एवं शिक्षित करने में समर्थ है--अन्य तीन आश्रमों के सदस्यों—विद्यार्थी, सेवानिवृत्त लोग एवं वे लोग जो संसार का त्याग कर देते हैं तथा परिश्रम नहीं करते, के लिये गृहस्थ ही व्रत्य उत्पन्न करता है तथा सेवा करता है। इसलिए वह गृहस्थ आश्रम ही सर्वोत्तम आश्रम है। उदाहरणार्थ यदि एक विद्यार्थी महाविद्यालय जाता है, वह लड़का या लड़की बहुत से धन व्यय करता है, कौन देता है यह ? पिता या माता, काम करने वाला व्यक्ति, ब्रह्मचारी या विद्यार्थी कुछ भी उपार्जन नहीं करता। वानप्रस्थी आधुनिक समय का सेवा निवृत्त मनुष्य भी कुछ भी उपार्जन नहीं करता तथा उत्पादनशील परिश्रम नहीं करता, उसी प्रकार संन्यासी भी। काम करने वाला उत्पादन-शील वर्ग केवल गृहस्थ हैं। इसमें कितना विलक्षण आध्यात्मिक विकास निहित है। मन और अन्न का अर्थ है शिक्षा एवं भोजन। अन्वहम् का अर्थ है सततरूप से। गृहस्थेनैव धार्यते का अर्थ—क्योंकि यह भार केवल गृहस्थ द्वारा ही वहन किया जाता है, तस्मात् ज्येष्ठाश्रमी गृही अर्थात् अतः गृहस्थ ही सर्वोत्तम आश्रम है।

इस गृहस्थ की आधुनिक अभिव्यक्ति लोक-तांत्रिक नागरिक की आधुनिक अवधारणा एक स्वतन्त्र एवं उत्तरदायी नागरिक में प्राप्त होती है, न कि वह व्यक्ति संविधान के अनुसार जिसकी उम्र हो गई है। नागरिक आनुवांशिकी सीमित नहीं होता। उस स्त्री या पुरुष के उत्तर-दायित्व राष्ट्रव्यापी होते हैं तथा वह स्त्री या पुरुष उन चुनौतियों को स्वीकार करता है। वह स्त्री या पुरुष भारत के किसी एक भाग में क्यों न रह रहा हो, परन्तु उसका सम्बन्ध राष्ट्र में दूर और पास रहने वाले लोगों के कल्याण से हैं। गृहस्थ का वह सुन्दर आदर्श इन आधुनिक शताब्दियों में मात्र एक आनुवांशिकी सीमित गृहस्थ तक सीमित हो गया है जो आज केवल उम्र के द्वारा पारि-भाषित नागरिक के रूप में अवतरित हुआ है। पुरातन गृहस्थ आदर्श की अभिव्यक्ति केवल आधुनिक प्रदीप्त नागरिक में प्राप्त होती हैं जिसमें एक आध्यात्मिक विकास हो गया है, जो मात्र उम्र के द्वारा परिभाषित नागरिक में नहीं है। यहीं पर आध्यात्मिक मूल्यों का उन्मीलन सामने आता है।

हमारे सभी बच्चों को लें, उनको नागरिकता का बोध प्रदान करें, उनको संस्कारित करें, आप स्वतन्त्र भारत के नागरिक हैं। आप हमारे लाखों अन्य नागरिकों में से एक नागरिक बन्धु हैं, उनमें से कुछ अधोमानवीय जीवन जीते हैं, आपको प्रेम और एकत्व तथा अपृथकता की भावना से उनकी सेवा करनी है तथा उनको ऊँचा उठाना है। इस प्रकार की शिक्षा से मानव प्रेम, सेवा की भावना, समर्पण एवं कार्य क्षमता जैसे ज्योतिर्मय मूल्य आयेंगे। आज इसी की अत्यधिक आवश्यकता हैं इसलिए आप विज्ञान और मानवीय मूल्यों के विषय के संयोजन के महत्व को देख सकते हैं। मैंने पूर्व में आपको बंगलोर के प्रस्तावित महात्मा गाँधी विज्ञान और मानवीय मूल्य केन्द्र प्रकल्प के बारे में कहा। नवम्बर माह में कभी भारतीय विद्या भवन ने मुझे इस प्रकल्प के उद्घाटन हेतु आमंत्रित किया है। मैं आपके ध्यान में यह लाना चाहता हूँ, आप हमारे विशाल वैज्ञानिक समुदाय के अंग हैं। यह एक महान प्रकल्प है, आइये हम इसे सफल बनायें। भारत की समस्याओं तथा उनके समाधान पर हम भारतीय दृष्टिकोण से एकत्वकारी एवं सामग्रिक दृष्टिकोण से विचार करें। इस दृष्टिकोण के अनुसार विज्ञान और धर्म तथा धर्म और धर्म के बीच जन्मजात विभेद रखने का कोई अर्थ नहीं है। भारत मानता है कि धर्म स्वयं मानव उन्नति, विकास एवं परिपूर्णता का विज्ञान है, यह "मानव संभावनाओं" का विज्ञान है, सर जूलियस हक्सले के शब्दों में "हमें एक "नये विज्ञान" की आवश्यकता है", उन्होंने कहा—"हमारे पास आज बहुत सी भौतिक संभावनाओं का हमने अध्ययन कर लिया है और नवीनतम है नाभिकीय ऊर्जा। भौतिकी तकनीकी में हमें नाभिकीय ऊर्जा प्रधान स्रोत के रूप में प्राप्त होती हैं। परन्तु उसकी समता की मानव संस्थान से आने वाली एक नई ऊर्जा की आपको आवश्यकता है जो उस नाभिकीय ऊर्जा को सृजनात्मक एवं लाभदायक बना सकें।

(क्रमशः)

—अनुवादक डॉ० सुरेश चन्द्र शर्मा

♣

---

पृथ्वी की तरह सब कुछ सहन करने की शक्ति अर्जन करो।

पवित्रता, दृढ़ता और उद्यम—ये तीनों ही गुण मैं एक साथ चाहता हूँ।

गम्भीरता के साथ शिशुवत् सरलता को मिलाओ।

—स्वामी विवेकानन्द

# भगवान श्रीरामकृष्ण के प्रति

गोवर्धन प्रसाद बख्शी
कवर्धा, म० प्र०

भक्ति प्रेम के आराधन में
बीता जीवन तेरा
हो व्याकुल मां के दर्शन को
रोना भगवन तेरा।

पागल जग पागल कहता था
तुमको हे नारायण,
कौन जानता था आये थे ?
जग को करने पावन।

परमहंस कहलाये जग में
तज दुनिया की माया
तनिक न छू पाई तुमको
जग में बंधन की छाया।

त्रेता में तुमने पुरुषोतम !
अग्नि वाण बरसाये
योगेश्वर बन चक्र सुदर्शन
ले द्वापर में आये।

मधुर रागिनी से गुंजित हो
मृदुल धरा मुस्काई
मनमोहन वंशी सुन तेरी
फूल उठी अमराई।

व्याकुल व्यथित यहां जग में थी
जिस अछूत की काया
मां से बढ़कर प्यार तुम्हारा
पा चरणों में आया।

कलयुग में डरकर बैठा था
जग जीवन सहमे से
मातृभाव को लेकर भगवन
रामकृष्ण बन आए।

# एक अपील

रामकृष्ण मठ
पो०-बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा
(प० बंगाल) ७११ २०२

जैसा कि आप में से अधिकांश लोग जानते हैं कि विश्वव्यापी रामकृष्ण भावधारा के संस्थापकों की पवित्र स्मृतियों के संरक्षणार्थ बेलुड़ मठ में एक संग्रहालय की स्थापना की गयी है, जिसका उद्घाटन १३ मई, १९९४ ई० को संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी के हाथों सम्पन्न हुआ था।

श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी, स्वामी विवेकानन्द तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों द्वारा उपयोग में लाये गये वस्त्र, पादुकाएँ तथा अन्य वस्तुएँ, उनके द्वारा लिखित पत्र और उनके द्वारा पढ़ी गयी पुस्तकों आदि को संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। संग्रहालय में संलग्न अत्याधुनिक पुराभिलेखागार में उपरोक्त वस्तुओं को आधुनिकतम तकनीक की सहायता से संरक्षित किया जाता है। हमें आपको यह भी सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि विगत ४ फरवरी, १९९७ को पूज्य संघाध्यक्ष महाराज ने एक नयी तकनीकी दृष्टि से नियोजित, विशाल संग्रहालय तथा पुराभिलेखागार भवन की आधारशिला रखी।

वैसे अनेक व्यक्ति तथा संस्थाएँ अपने पास पड़ी ऐसी वस्तुएँ हमें दे रहे हैं, तथापि हम एक बार पुनः अपने भक्तों, संस्थाओं तथा जनसाधारण से यह अपील करते हैं कि वे अपने पास पड़ी इस तरह की किसी भी स्मरणीय वस्तु को बेलुड़ मठ के ट्रस्टियों अथवा अपने निकट स्थित हमारे किसी भी शाखाकेन्द्र को सौंप दें। हम एक बार पुनः दुहराते हैं कि यदि ये वस्तुएँ वैज्ञानिक पद्धति से संरक्षित नहीं की गयीं, तो वे समय के आघात को नहीं झेल सकेंगी और सदा के लिए दुनिया से विलुप्त हो जायेंगी। हम आपके हार्दिक सहयोग की अपेक्षा करते हैं और हम इसके लिए आपका चिर आभारी रहेंगे।

पुराभिलेखागार के कार्य, प्रस्तावित भवन का मॉडल तथा प्रदर्शित वस्तुओं के नमूनों के आधार पर बनायी गयी १५ मिनट का एक वीडियो कैसेट विक्रय के लिए उपलब्ध है, जिसे रामकृष्ण संग्रहालय, बेलुड़ मठ और हमारे कुछ भारतीय तथा विदेश में स्थिति केन्द्रों से प्राप्त किया जा सकता है।

स्वामी आत्मस्थानन्द
महासचिव

१७-६-१९९६

# सत्यमेव जयते

—स्वामी योगात्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, शिलाँग (मेघालय)

[ अगस्त १९९४ के जीवन विकास में प्रकाशित मराठी लेख का हिन्दी अनुवाद । अनुवादिका हैं—श्रीमती ज्योत्सना किरवई ।—सं० ]

एक चतुर न्यायाधीश की यह कथा है। एक व्यक्ति ने अपने मित्र को कुछ रकम उधार दी। बहुत समय बीतने के बाद भी मित्र ने जब उधार ली गयी रकम वापस नहीं की तब उस व्यक्ति ने इस बाबत अपने मित्र को याद दिलाया। तब अचंभित मुद्रा में मित्र ने कहा—"कैसे पैसे, कैसी रकम ? मैंने तो तुमसे एक भी पैसा उधार नहीं लिया। कब लिए थे मैंने तुमसे इतनी रकम उधार ? झूठे इल्जाम तो मत लगाओ मुझपर।"

"अरे वाह ! छः महीने पहले इतनी मिन्नतें करके मुझसे पैसे उधार लिए और तुरंत वापस करने का वादा भी किया था और अब कैसा दर्शा रहे हो मानो तुम्हें कुछ भी याद नहीं।"

दोनों मित्रों के बीच इसी मुद्दे को लेकर बहुत देर तक बहस चलती रही पर निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला। तब वह व्यक्ति अपनी फरियाद लेकर न्यायाधीश के पास पहुँचा तथा किस तरह उसके मित्र ने उसका धन हड़प लिया इस बाबत शिकायत की। न्यायाधीश ने सब ध्यानपूर्वक सुनकर तुरंत ही मित्र को वहाँ सिपाही भिजवाकर बुलवाया।

"छोड़ो मुझे, न्यायाधीश महाशय, मुझ पर दया की जाये। मुझ पर अन्याय किया जा रहा है। कैसे पैसे ? किसने लिए ? मुझे तो इस बाबत जरा भी खबर नहीं, मित्र ने न्यायाधीश के समक्ष अपनी गुहार लगायी।

तब न्यायाधीश ने शिकायतकर्त्ता की ओर मुड़ कर कहा—"ठीक, तुम कहते हो कि इसने तुमसे पैसे लिए। पर तुम्हारे पास इसका क्या सबूत है ? कोई गवाह वगैरह ?"

"सबूत ! अं·····नहीं वैसा कोई सबूत मेरे पास नहीं है।"

"कोई गवाह नहीं था क्या ? किसी के तो सामने इसे पैसे दिये होंगे ? यदि वैसा कोई हो तो उसे ले आओ।"

"नहीं साहब, इस दुष्ट व्यक्ति को मैंने अपना मित्र समझकर, अपना समझकर पैसे उधार दिये थे। किसी गवाह की जरूरत मैंने समझी ही नहीं। और अब इसने ही मुझे धोखा दिया। मैं ही मूर्ख था, अब दूसरों को कुछ कहने से क्या फायदा।"

ऐसा कहकर निराश सा वह वापस जाने को मुड़ा।

" अरे रुको रुको, तुम्हारा कहना है कि जब तुमने इसे ऐसा उधार दिये तो कोई भी गवाह नहीं था। वैसे कैसे हो सकता है ? कहाँ दी थी तुमने इसे यह रकम ?"

"साहब, हम दोनों बाजार से वापस आ रहे थे तब इमली के एक पेड़ के नीचे थोड़ी देर सुस्ताने के लिए रुके थे। माल की बिक्री की रकम मेरे पास थी। वहीं यह पूरी लेन-देन हुई थी।

"यह हुई न बात ! याने ईमली का वह पेड़ गवाही के लिए था और तुम कह रहे हो कि कोई भी गवाह नहीं था।"

"क्या साहब ! क्यों मुझ गरीब का वेवक्त ही मजाक उड़ा रहे हो। अब क्या वह पेड़ गवाही देगा। यहाँ मेरे पैसे डूब गये और आपको मजाक सूझ रहा है।"

"चुप रहो ! कोर्ट कभी भी विनोद नहीं करता। पेड़ गवाही देने यहाँ नहीं आ सकता तो क्या हुआ ? यह लिपिक तुम्हारे साथ जायेगा और पेड़ से उसकी गवाही लेकर बयान लिखकर लायेगा। चलो तुम दोनों काम के लिए तुरंत रवाना हो जाओ।"

न्यायाधीश के विचित्र व्यवहार को देखकर वह व्यक्ति खीझ उठा। 'भलेमानस को कभी भी कोर्ट के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए' पूर्वजों के इस उपदेश को याद करते हुए वह व्यक्ति लिपिक के साथ निर्धारित पेड़ की ओर चल पड़ा।

आधा घंटा बीत गया पर ये दोनों वापस नहीं आये। तब न्यायाधीश ने थोड़ा क्रोधित होकर आरोपी की तरफ देखकर कहा—"कितनी देर लगा रहे हैं ये दोनों। बैठे होंगे कहीं चाय पीते हुए। नहीं तो अभी तक उन्हें वापस आ जाना चाहिए था।"

"साहब अभी घंटा भर तक तो वे लोग वापस आ ही नहीं सकते। यहाँ से ठीक दो कोस की दूरी पर वह पेड़ है।" प्रतिवादी ने कहा

करीबन दो घण्टे के बाद वे दोनों वापस आए।

'पेड़ ने तुम्हारी ओर गवाही दी है।' न्यायाधीश ने फरयादी से कहा तथा प्रतिवादी की ओर मुड़कर कठोर स्वर में बोले—"चुपचाप इसके पैसे वापस कर दो और वह भी ब्याज समेत। नहीं तो सजा मिलेगी। वह झाड़ दो कोस दूर है न ? तुम्हें कैसे पता चला महाशय···?

सत्य कभी नहीं छिपता

वह सत्य कभी-न-कभी अवश्य ही बाहर निकलता है। उसे कितना भी दबाने की कोशिश की जाये वह हमेशा उजागर होगा ही। झूठे व्यक्ति को भी सच के धरातल का ही सहारा लेना पड़ता है। "मैं हमेशा झूठ बोलता हूँ। यह वाक्य ही कितना निरर्थक है। यदि इस बात को सच माना जाय तो इस वाक्य को भी झूठा मानना पड़ेगा। पर साथ ही यह वाक्य यह भी दर्शाता है कि मैं कभी-कभी सच भी बोलता हूँ। याने मूल वाक्य ही झूठा है। यदि इस वाक्य को सच मान लिया जाये तो कथन की असत्यता प्रकट हो रही है। अर्थात् कोई भी व्यक्ति हमेशा झूठ बोल ही नहीं सकता। प्रत्येक व्यक्ति को अंत में सत्य का आश्रय लेना ही पड़ता है।

सत्य हमेशा अस्तित्व में रहने वाला याने टिकाऊ है। असत्य भले ही सत्य को थोड़ी देर के लिए अपने आवरण में छुपा ले पर वह नष्ट हो ही नहीं सकता। इसके विपरीत सत्य के तीव्र दाहक स्वभाव के कारण असत्य स्वयं ही जलकर नष्ट हो जाता है और इसीलिए सत्य को छुपाने के लिए यदि एक बार झूठ बोला जाय तो फिर उस झूठ को निभाने के लिए पुनः झूठ बोलना पड़ता है। और इसी झूठ बोलने की प्रक्रिया को बार-बार दोहराना पड़ता है। क्योंकि सत्य का

स्वभाव ही झूठ के आवरण को विदीर्ण कर बाहर निकलने का है। झूठ के कितने ही आवरण सत्य पर डाले जाय वे झूठे ही साबित होते हैं। सत्य का प्रखर प्रकाश उन आवरणों को भेदकर बाहर निकल ही पड़ता है।

सत्य की धारणा मानव में ही नहीं, सभी प्राणियों में जन्मजात होती है। किसी भी बात का मूल्यांकन करने के लिए, वह बात योग्य है या अयोग्य इसका निर्णय लेने के लिए सत्य का पैमाना उसकी चेतना में हमेशा जागृत रहता है।

*मेक्स डेलब्रुक नामक जीवशास्त्रज्ञ जिसे नोबल पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है, ने Riddle of life (जीवन की पहेली) शीर्षकांतर्गत एक विचारोत्तेजक निबन्ध लिखा है। इस निबन्ध में उसने पूर्ण विश्व को सजीव तथा दो परस्पर पृथक भागों में विभाजित करना असंभव है यह सिद्ध करते हुए प्रश्न उपस्थित किया है कि "क्या हम जीवन की निर्मिति कर सकते हैं ?"

इस प्रश्न का नकारार्थी उत्तर देते हुए उसका स्पष्टीकरण करते हुए उसने लिखा है—'सत्य की मूलभूत, सभी के लिए आधारभूत धारणा किसी भी निर्मिति के पहले ही अस्तित्व में आ चुकी होती है। सत्य की मूलभूत धारणा की निर्मिति की ही नहीं जा सकती। साथ ही उसे सिद्ध भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि सत्य सिद्ध करने की जो प्रक्रिया या पद्धति होती है वह स्वतः ही पहले से ही ज्ञात सत्य पर ही आधारित होती है।

डेलब्रुक कहते हैं—"हम बहुधा सत्य की आधारभूतता की ओर ध्यान ही नहीं देते। यानी सभी विचारपद्धतियों के लिए सत्य की ही आधारभूत धारणा होती है यह बात हमारा ध्यान आकर्षित ही नहीं कर पाती। कुछ स्वयं सिद्ध सत्यों तथा तर्कों के कुछ विशिष्ट नियमों के आधार पर कार्य करने वाला एक संगणक का निर्माण किया जा सकता है। इस बात को हम सहजता से मान लेंगे। यह संगणक इन स्वयं सिद्ध सत्य आधारों की सहायता से असंख्य विधानों को सिद्ध कर सकने की क्षमता रखने वाला हो सकता है। पर यदि हमारा उन मूल स्वयंसिद्ध विधानों तथा उक्त तार्किक पद्धति पर विश्वास होगा तभी हम उन सिद्ध किये गये नियमों को सत्य मान सकेंगे और इस तरह जो भी विधान संगणक की सहायता से सत्य सिद्ध किये जायेंगे सबका कुल योग ही उस संगणक के लिए 'सत्य' की व्याख्या होगी, इस तरह के विचारों की ओर हमारा मन आकृष्ट होगा। तथापि तर्कशास्त्र ने बहुत पहले ही इस बात की ओर निर्देश किया है कि हमें सटीक वस्तुनिष्ठ भाषा तथा उससे भी परे हो जाने वाली यानी भाव अभिव्यक्त करने वाली भाषा के बीच अंतर को स्पष्ट करना होगा। यदि वस्तुनिष्ठ भाषा को स्वविरोध से मुक्त रखना हो तो यह जरूरी हो जाता है कि उसमें से 'सत्य' यह शब्द तथा उसकी चर्चा को बहिष्कृत करना होगा। इससे एक ऐसा अद्भुत निष्कर्ष निकलेगा कि ऐसे विधानों का अवश्य ही अस्तित्व होगा जो कि सत्य है पर जिन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता। अर्थात् 'सत्य' की धारणा, (यदि वह अर्थपूर्ण हो तो) उन सब विधानों से जो सिद्ध हो

---

*ये आधुनिक भौतिकशास्त्र के विद्यार्थी थे। इस विषय में संशोधन हेतु उन्होंने बहुत वर्ष व्यतीत किये। इसी शताब्दी के एक प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डा० नील्स शोर के मुख्य सहयोगी के रूप में भी इन्होंने कार्य किया। पर कालांतर में अनुजीवशास्त्र में इनकी सारी रुचि बढ़ी तथा इसी में संशोधन के लिए १९६९ में इन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बने हैं तथा उन सब पद्धतियों से जिनके इन विधानों को सिद्ध किया जा चुका है, प्राचीन तथा आधारभूत होनी चाहिए तथा उनसे भिन्न भी होनी चाहिए याने दूसरे शब्दों में सत्य की धारणा किसी भी संगणक से अधिक पुरातन तथा भिन्न होनी चाहिए।

और इसीलिए यदि हम बोध-शक्ति का विचार, चाहे वह जड़ में से पैदा हुई हो या यंत्र निर्मित हो इस तरह कर सकें फिर भी सत्य की धारणा इन सबके पहले की है या यों कहिये अति प्राचीन है। उसका न तो निर्माण किया जा सकता है और न ही उसे सिद्ध किया जा सकता है।*

जब हमने यह मान ही लिया है कि सत्य सभी के लिए आधारभूत होता है तब जिस प्रकार किसी भवन की नींव अव्यक्त होती है, अप्रकट होती है उसी प्रकार सत्य भी सभी का नींव स्वरूप होने के नाते अव्यक्त रह सकता है अप्रकट रह सकता है। इस तरह का अनुमान लगाना स्वाभाविक ही है। पर वैसा नहीं है। यहाँ हम 'नींव' के अर्थ को इतने विस्तृत रूप में नहीं ले सकते। सत्य 'नींव' की भांति सभी को आधार अवश्य देता है पर 'नींव की भांति अप्रकट नहीं रहता। इसके विपरीत सभी विरोधी को भरमसात कर एक अलौकिक सत्यता के साथ, शान के साथ प्रकट होने का प्रयास करता रहता है।

जिन्होंने सत्य का दृष्टांत किया है वैसे सत्यदृष्टा ऋषियों का कहना है कि सत्-चित् आनन्दस्वरूप एकमेवाद्वितीय परब्रह्म ही हम, सबका तथा इस अखिल विश्व का सत्य स्वरूप है। यहाँ हर जगह भले ही अनेकत्व के दर्शन होते हैं पर फिर भी मूलतः एक अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है। यही ऋषियों के अनुभवों का सार है। उस पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है और इसीलिए 'जो नहीं है' वैसे अनेकत्व के दर्शन होने लगते है। तथा 'जो नहीं है' वैसे दुःखों का अनुभव हमें होने लगता है।

यद्यपि हमें विभिन्न दुःखों का तथा अनेकत्व का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है फिर भी हमारा सत्य स्वरूप सदा ही इन झूठे अनुभवों के आवरण को छिन्न-भिन्न कर प्रकट होने का प्रयत्न करता रहता है। और इसीलिए अनेकत्व के दर्शन होने के बावजूद हमारा मन एकत्व की ओर खिंचा चला जाता है। पूरे विश्व में एकता के लिए समानता के लिए कितने ही प्रयत्न अनवरत रूप से होते ही रहते हैं। 'हम सब एक हैं' यह विचार भले ही हमारे अनुभवों को संतुष्ट नहीं कर पाता पर फिर भी विश्व में एकता की आवश्यकता को हमारा मन सदैव महसूस करता रहता है। इस जगत में विश्वबन्धुत्व, विश्वैक्य, सामाजिक एकता के कितने ही विचारों में एकता हेतु कितने ही प्रयत्न शुरू हैं ? क्यों भला ? क्योंकि भले ही हमें कदम-कदम पर अनेकत्व के दर्शन होते हैं पर फिर भी वह सत्य नहीं, यह बात उतनी ही सत्य है। एकत्व ही एकमेव सत्य है और वही हमें एकत्व की स्थापना के लिए प्रयत्नशील किये हुये है। सत्य अपने ऊपर के आच्छादन को भेदकर प्रकट हो रहा है। जाने अनजाने में ही तथा बहुत ही स्वाभाविक रूप से एकत्व का आकर्षण सतत् हमारे मन को आकृष्ट करता रहता है और उसी में से हमें चकमा देकर सत्य अभावित रूप से प्रकट होता रहता है।

समस्त भौतिक विज्ञानों के सिद्धांत याने

---

*The World of Physics Vol. II P-636 से अनुवादित डेलब्रुक का यह निबन्ध नोबल पुरस्कार लेते वक्त पढ़ा गया था। जीवन-सिद्धांत बावत और भी अनेक मननीय विचार इस निबन्ध में हैं।

अनेकत्व के भ्रामक आवरण को छेद कर एकत्व के सत्य के रूप में प्रकट होने वाला प्रकाश ही है। भौतिक विज्ञानों की सहायता से एकत्व का सत्य प्रकाश रूप में प्रकट होता है। विज्ञान की सहायता से अनेक विविध घटनाओं को विविध वस्तुओं को विविध शक्तियों को विशिष्ट नियमों द्वारा एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया जाता है। इन सब बातों में भले ही अनेकत्व का आभास होता है पर वह आभासी अनेकत्व हमारी आँखों में, हमारी बुद्धि को कांटे की भाँति खटकता रहता है। और इसीलिए हम इन सब अनेक बातों के बीच 'सम्बन्ध' खोजने लगते हैं। उनमें परस्पर संगत खोजने लगते हैं। और इस तरह 'विज्ञान' का विकास होने लगता है। एकत्व का सत्य अनेकत्व के आभास को हटा कर जैसे-जैसे प्रकट होने लगता है वैसे-वैसे 'विज्ञान' की अधिकाधिक उन्नति होने लगती है। और इस तरह ऋषियों ने स्पष्ट रूप से जिस एकत्व के सत्य की उद्घोषणा की थी उस ओर विज्ञान अनजाने ही अग्रसर होने लगा है।

एकत्व के साथ-साथ सत्य का स्वरूप आनंदमय भी है। आनन्द देने वाला है। और इसीलिए जिस तरह हमें एकत्व का आकर्षण है उसी तरह आनन्द का भी आकर्षण है। हमारे मन को आनन्द भी उसी तीव्रता से मोहित करता है जितना कि एकत्व और यहाँ पुनः एक लक्षणीय बात सामने आती है। वह यह कि आनन्द और सुख का यह आकर्षण एकत्व की मदद से ही सन्तुष्ट हो सकता है। किसी भी स्तर का सुख क्यों न हो, वह विषय तथा विषयी के संयोग से ही उत्पन्न होगा। याने एकत्व से ही मिलेगा। अब चूँकि विषय तथा विषयी का संयोग या एकत्व क्षणकालिक होता है अतः इससे मिलने वाला सुख भी क्षणिक होता है। यदि हमें चिरस्थायी एकत्व की प्राप्ति हो जाये तो हमें ही उसी के साथ ही हमें चिरस्थायी (शाश्वत) सुख की प्राप्ति हो सकती है।

कठोपनिषद में लिखा है

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं
बहुधा यः करोति।
तं आत्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं
शाश्वतं नेतरेषाम्॥

सर्वभूतों के अन्तर उनको परिचालित करने वाली आत्मा का वास है। वह एक है पर अज्ञान के कारण विभिन्न रूपों में आभासित होता है। ये बुद्धिमान जो अपने अन्तर में बसने वाले इस 'एक' को जान जाते हैं वे ही शाश्वत सुख के अधिकारी बनते हैं। बाकी लोग इससे वंचित रह जाते हैं।

एकत्व तथा सुखत्व दोनों एक साथ ही प्रकट होते हैं क्योंकि दोनों ही सत्य के ही भिन्न-भिन्न पहलू हैं। जिस तरह उच्चश्रेणी के आम का रसास्वादन करते वक्त उसकी सुगंध तथा माधुर्य दोनों का ही अनुभव होता है उसी तरह सत्य के प्रकट होने के साथ ही उसके एकत्व तथा सुखत्व ये दोनों पहलू प्रकट होने लगते हैं।

● ● ●

सत्य निश्चित ही प्रकट होता है। उसे कितना भी छुपाने का प्रयत्न किया जाये तो भी सत्य अंत में सबके समक्ष आयेगा ही। और इसीलिए सत्याचरण करने वाला, सत्यमार्ग पर चलने वाला अंत में विजयी होता ही है। और असत्य की पराजय होनी निश्चित ही है। असत्याचरण करने वाला चाहे कितना भी छल कपट कर ले, छल प्रपंच रचा ले पर सत्य की दाहकता असत्य को भस्म करके ही छोड़ेगी। इसीलिए मुण्डक उपनिषद् में लिखा है—

'सत्यमेव जयति नानृतम् सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा, यत्र तत् सत्यस्य परम निधानम्॥

यानी सत्य की हमेशा ही विजय होती है और असत्य की सर्वदा ही पराजय। सत्य के पथ पर चल कर ही देवयान अर्थात् परब्रह्म के प्राप्ति का मार्ग विस्तृत होता है। जिस मार्ग से जीवन को कृतार्थ करने वाले, परिपूर्ण करने वाले ऋषिमुनि अनुगमन करते हैं वही इस सत्य का मार्ग है। तथा यही मार्ग मानव को परम लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है।

भगवान श्रीरामकृष्ण सत्यपालन को बहुत महत्त्व देते थे। सत्य भाषण ही इस कलियुग की तपस्या है। सत्यपालन से ही सत्यस्वरुप ईश्वर का लाभ हो सकता है। ऐसा श्री रामकृष्णदेव सदैव कहा करते थे। इस विश्व के अखिल चराचर पर सत्य का ही वास्तविक शासन चलता है। सभी जाने-अनजाने उसे ही व्यक्त करने की कोशिश करते रहते हैं। कोई उसे प्रकट न करने का कितना भी दृढ़ निश्चय कर ले पर वह प्रकट होगा ही। उसको छुपा कर रखने वाला सदैव पराभूत होता है। असत्याचरण करने वाले को शायद थोड़ी देर के लिए यह लगे कि उसकी विजय हो रही है पर यह उसका भ्रम ही सिद्ध होगा क्योंकि उसकी अंतरात्मा सदैव उसके विरुद्ध गवाही देती रहती है।

अनुवादिका
सौ० ज्योत्सना किरवई
४० अंबाझरी ले आउट
नागपुर-१०

# स्वामी विवेकानन्द तुमसे कहते हैं—

साहसी होओ! मेरे बच्चों को सबसे पहले साहसी होना चाहिए। किसी भी दशा में सत्य के साथ थोड़ा-सा भी समझौता न करो। उच्चतम सत्यों का प्रचार करो—उन्हें दुनिया भर में बिखेर दो। मान खो बैठने अथवा अप्रिय संघर्ष उत्पन्न हो जाने का भय मत करो। यह निश्चित जान लो कि यदि तुम नाना प्रकार के प्रलोभनों के बावजूद भी सत्य से लगे रह सको, तो तुममें ऐसी दैवी शक्ति आ जाएगी, जिसके समक्ष लोग तुमसे वे बातें कहते डरेंगे, जिन्हें तुम सत्य नहीं समझते। यदि तुम लगातार चौदह वर्ष तक अखण्ड रूप से कठोरता के साथ सत्य का पालन कर सको, तो तुम जो कुछ कहोगे, लोग उसी पर पक्का विश्वास कर लेंगे।

* * * *

विचार ही हमारी कार्य-प्रवृत्ति के नियामक हैं। मन को सर्वोच्च विचारों से भर लो, दिन-पर-दिन ये ही सब भाव सुनते रहो, मास-पर-मास इसी का चिन्तन करो। पहले पहल सफलता न भी मिले; पर कोई हानि नहीं, यह असफलता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह मानव-जीवन का सौन्दर्य है। इन असफलताओं के बिना जीवन क्या होता! यदि जीवन में इस असफलता को जय करने की चेष्टा न रहती, तो जीवन धारण करने का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। उनके बिना जीवन में कवित्व ही कहाँ रह जाता?

# 'उठो ! जागो !!'

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

[ विगत २० नवम्बर, १९९४ को रामकृष्ण मठ एवं मिशन द्वारा रवीन्द्र स्टेडियम, कलकत्ता में एक विशाल युव-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। समग्र भारत से आये प्रायः चालीस हजार युवा भाई-बहनों ने इसमें भाग लिया। इस सम्मेलन को रामकृष्ण आश्रम, राजकोट में कार्यरत तथा वहीं से प्रकाशित रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा की प्रख्यात गुजराती मासिक पत्रिका 'श्री रामकृष्ण ज्योत' के यशस्वी सम्पादक स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी ने हिन्दी में बड़े ही ऊर्जस्वी रूप में सम्बोधित किया था जो निबन्धकार में रामकृष्ण ज्योत में छपा था। प्रस्तुत लेख उसी पत्रिका से रूपान्तरित कर साभार प्रकाशित किया जा रहा है—सं ]

विदेश से वापस आने के बाद स्वामी विवेकानन्द जी ने अपी मातृभूमि के युवा वर्ग का आह्वान करते हुए शंखनाद किया था—'उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति किये बिना विश्राम मत लो' उस जमाने के युवावर्ग ने इस आह्वान को हृदय से अपनाया। हमें राजनैतिक स्वाधीनता मिली। लेकिन स्वाधीनता के बाद क्या हुआ ? हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में डूब गये···हम उठे, जगे और फिर सो गये ! स्वामीजी ने ऐसा नहीं कहा था कि, "उठो, जागो और फिर सो जाओ···।" उन्होंने तो कहा था कि, जब तक लक्ष्य प्राप्ति न हो तब तक प्रयत्न करते रहो।" यह 'लक्ष्य' स्वामीजी के मतानुसार मात्र राजनैतिक आजादी नहीं था।

राजनैतिक स्वाधीनता वे चाहते अवश्य थे, किन्तु उसे अन्तिम लक्ष्य नहीं मानते थे। सन् १८९७ ई० में मद्रास की साहित्य समिति, (ट्रिप्लिकेन) में व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने कहा था—"जगत में बड़ी-बड़ी विजयी जातियाँ हो चुकी हैं। हम भी महान् विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की कथा को भारत के महान् सम्राट् अशोक ने धर्म और आध्यात्मिकता ही की विजयगाथा बताया है। फिर से भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करनी होगी। यही मेरे जीवन का स्वप्न है, और मैं चाहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक, जो कि मेरी बातें सुन रहा है, अपने-अपने मन में उसी स्वप्न का पोषण करे और उसे कार्य रूप में परिणत किये बिना न छोड़े।···हमारे सामने यही एक महान् आदर्श है, और हर एक को उसके लिए तैयार रहना चाहिए—वह आदर्श है भारत की विश्व पर विजय—इससे छोटा कोई आदर्श नहीं चलेगा।···उठो भारत, तुम अपनी आध्यात्मिकता द्वारा जगत् पर विजय प्राप्त करो !" (भारतीय व्याख्यान : पृ० २०२)।

इस भगीरथ कार्य को कौन सम्पन्न करेगा ? स्वामीजी ने कहा था, "मेरी आशाएँ युवा वर्ग पर टिकी हुई हैं।" उस समय के युवा वर्ग ने स्वामीजी का प्रथम स्वप्न—भारत की स्वाधीनता का स्वप्न

साकार किया था। महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डॉ० राधाकृष्णन्, जवाहर लाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री अरविन्द, भगिनी निवेदिता आदि देशभक्तों के प्रेरणास्रोत थे—स्वामी विवेकानन्द। अब स्वामीजी का दूसरा स्वप्न—'भारत द्वारा समस्त विश्व की विजय'—साकार करने के लिए युवा वर्ग को कमर कसनी पड़ेगी।

विश्व के सुप्रसिद्ध इतिहासकारआर्नाल्ड टॉयन्बी ने भी कहा था, वर्तमान समय में हम पृथ्वी के इतिहास के एक युग परिवर्तन के अध्याय में जी रहे हैं. जिस इतिहास का प्रारम्भ किया है पाश्चात्य भावादर्श ने; किन्तु अगर इस अध्याय को समग्र मानव जाति के आत्महनन तथा आत्म-लोप से बचाना हो तो उसकी परिणति भारतीय होनी चाहिए···मानव इतिहास के इस सर्वाधिक भयंकर काल में बचने का एक मात्र पथ है—भारत का पथ। सम्राट् अशोक तथा महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धांतों में तथा श्रीरामकृष्ण की सर्व धर्म की समन्वय की अनुभूति में हमें यह दृष्टिकोण और आदर्श मिलते हैं···इसके द्वारा समस्त मानव जाति को एक परिवार की तरह विकसित होने में मदद मिलेगी, और इस अणु युग में हमें आत्म-विनाश से बचाने के लिए यही एक मात्र विकल्प है।"

रूस के म्यूजियमों में कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी द्वारा किये गये शोध में अनेक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज मिले हैं। उनमें से एक है—नाजारोव नामक एक किसान ने फरवरी १९२८ में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर को लिखा था, वह पत्र····· इस पत्र में लिखा है,·····"परन्तु आपकी रचनाओं में मुझे सबसे ज्यादा पसन्द है—'साधना'। इसके अलावा मेरे पास भगवद्गीता, उपनिषद के कुछ अध्याय, गोस्पेल ऑफ श्रीरामकृष्ण' (श्रीरामकृष्ण वचनामृत) तथा स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थ हैं। मुझे ऐसा लगता है कि चाहे कोई जन्म से यूरोपियन हो तो भी आध्यात्मिक रूप से उसे भारतीय होना चाहिए।"

आज समस्त विश्व भारतीय अध्यात्म द्वारा उसकी विजय हो इसकी प्रतीक्षा कर रहा है। पाश्चात्य जड़वादी सभ्यता का कड़वा फल प्राप्त करने के बाद समृद्धिशील देश अब मानसिक शान्ति की प्राप्ति के हेतु भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्म को प्राप्त करने के लिए व्यग्र हैं, बेचैन हैं। समृद्धिशाली देशों में नशीले पदार्थों का सेवन, आत्महत्या तथा मानसिक बीमारियों की मात्राएँ बढ़ रही हैं। अमेरिका में ४८ प्रतिशत लोग भय से त्रस्त होकर शस्त्र रखने लगे हैं। हेमलॉक सोसायटी के संस्थापक डॅरॅफ हम्फ्रीस द्वारा लिखित पुस्तक 'Final Exit' अमेरिका में प्रकाशित हुई है। यह काफी प्रसिद्ध हुई। इसमें आत्म-हत्या के विभिन्न उपाय बताये गये हैं। जापान में सुरुमी वातारु (Tsurumi Wataru) द्वारा लिखित पुस्तक 'Kanzen Jisutsu Manual or The Complete Manual of Suicide' काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर रही है। इस पुस्तक में भी आत्महत्या करने के उपाय बताये गये हैं। पिछले दो वर्षों में इसकी तीन लाख से ज्यादा प्रतियाँ बिक चुकी हैं। फ्रांस में आत्महत्या करने वालों के लिए मार्ग-दर्शनयुक्त पुस्तक (Suicide-User's Instruction') सर्वाधिक बिकी पुस्तकों में से एक है। १९८२ से '८७ तक इसकी एक लाख सत्तर हजार प्रतियाँ बिक चुकी थीं। फ्रांस में लगभग एक लाख पैंतीस हजार लोग प्रतिवर्ष आत्महत्या करते हैं। आस्ट्रेलिया में १९९४ ई० में लगभग १,५०,००० युवक-युवतियों ने आत्महत्या का प्रयास किया।

रायटर की रिपोर्ट के अनुसार (१७ मई १९९३) जापान के स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा प्रथम

बार स्वास्थ्य रिपोर्ट तैयार की गयी है—इसमें बताया गया है कि ४४ वर्ष से अधिक वय के लगभग ४२ प्रतिशत लोग मानसिक रोगों से पीड़ित हैं।

रामकृष्ण मठ तथा मिशन के तत्वावधान में तारीख ११, १२, १८ तथा १९ सितम्बर, '९३ को कलकत्ता में नेताजी इन्डोर स्टेडियम में स्वामी विवेकानन्द के शिकागो व्याख्यान की शताब्दी का उत्सव आयोजित किया गया था—इस अवसर पर आयोजित विश्व धर्म परिषद् में व्याख्यान देते समय जर्मनी की वेदांत सोसायटी के अध्यक्ष फ्रेंक जाइजीन ने कहा था, यहाँ भारत में नेताजी इन्डोर स्टेडियम में बोलने का अवसर मिला है, इससे मुझे गर्व का अनुभव हो रहा है। क्योंकि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस मेरी जर्मनी में आये थे, अपने देश की स्वाधीनता की खोज में। आज हम जर्मनी से यहाँ नेताजी के भारत तक आये हैं, अपनी आत्मा की स्वाधीनता की खोज में। क्योंकि आत्मा की मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान मात्र भारत में ही मिलता है।

इसके बाद उन्होंने आश्चर्यजनक बातें कहीं। उन्होंने कहा, "हमें सिर्फ एक ही बात का अफसोस है कि बार-बार रामकृष्ण मठ और मिशन को अनुरोध करते हैं, फिर भी इतने वर्षों से संचालित हमारे जर्मनी के वेदांत केन्द्र को औपचारिक मान्यता प्रदान करके वे संन्यासियों को जर्मन में नहीं भेज रहे हैं। इसलिए हमने सोचा है कि हम स्वयं संन्यासियों को तैयार करेंगे। एक जर्मन युवती अभी सगर्भा है, वह रात-दिन श्रीरामकृष्ण वचनामृत और वेदांत की पुस्तकों का अध्ययन कर रही है, और ईश्वर से प्रार्थना कर रही है कि उसके गर्भ में जो बालक आकार ले रहा है—वह संन्यासी बने।

विश्व के कितने ही भागों में से वेदांत के केन्द्र प्रारंभ करने के लिए एवम् पहले से ही संचालित केन्द्रों को मान्यता देने के लिए रामकृष्ण मठ तथा मिशन पर दबाव बढ़ रहे हैं। बहुत से नये केन्द्र खुल रहे हैं और ढेर सारे केन्द्रों को मान्यताएँ दी जा रही हैं। परन्तु, संन्यासियों के अभाव के चलते मांग की पूर्ति नहीं की जा सकती है। हाल ही में, रूस, कनाडा तथा नीदरलैंड में रामकृष्ण मठ और मिशन के औपचारिक केन्दों की शुरुआत हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिका (१२), बंगला देश (१२) तथा जापान, फ्रांस स्वीट्जरलैंड, इंग्लैंड, सिंगापुर, मोरिशस, फीजी आदि केन्द्र वर्षों से कार्यरत हैं।

विडम्बना तो यह है कि आज जब पाश्चात्य समृद्धिशाली देश वेदांत का अमृतपान करने के लिए तत्पर हो रहे हैं—तब हमारे ही देश का युवावर्ग पाश्चात्य संस्कृति का अन्धा अनुकरण करने में आकण्ठ मग्न है। हमें अन्य देशों से बहुत कुछ सीखना है—इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु स्वामी विवेकानन्दजी किसी प्रकार के अंधानुकरण के, विवेकहीन नकल करने के प्रबल विरोधी थे। अपने सर्वाङ्गीण विकास के लिए पाश्चात्य विज्ञान तथा भारतीय वेदान्त का सम्यक् मिलन आवश्यक है—ऐसा स्वामीजी कहा करते थे, किन्तु अन्धानुकरण के विरोधी थे। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व स्वामीजी ने बंगला मासिक पत्रिका 'उद्बोधन' (मार्च १८९९ ई०) में 'वर्तमान भारत' नामक एक निबन्ध लिखा था। उसमें उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के आत्मघाती परिणाम के विरुद्ध चेतावनी देते हुए भारतवासियों को अपनी मातृभूमि के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए प्रखर आह्वान किया था। वह आह्वान एक अग्नि मंत्र है एक स्वदेश मंत्र है और आज भी वह उतना ही महत्व-पूर्ण एवं प्रासांगिक है।

स्वामीजी ने लिखा था—"ऐ भारत ! यही विकट भय का कारण है। हमलोगों में पाश्चात्य जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती जाती है कि भले-बुरे का निश्चय अब विचार-बुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें- वही बुरा ! अफसोस ! उससे बढ़कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा ?……

"ऐ भारत ! क्या दूसरों की हाँ में हाँ मिलाकर दूसरों की ही नकल कर, परमुखापेक्षी होकर इन दासों की-सी दुर्बलता, इस घृणित, जघन्य निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगे ? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे ? ऐ भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए—अपने व्यक्तिगत सुख के लिए— नहीं है; मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट् महामाया की छाया मात्र है; तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हारे भाई हैं।"

भारत की वर्त्तमान सारी समस्याओं का समाधान स्वामीजी के उपर्युक्त 'स्वदेश मंत्र' में हमें मिल जाता है। राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, आरक्षण विरोधी आन्दोलन, उदारीकरण की नयी आर्थिक नीति के प्रत्याघातों की समस्या…इन सारी समस्याओं का समाधान स्वामीजी की इस प्रेरणादायिनी वाणी में मिलता है। घर-घर में, प्रत्येक स्कूल-कॉलेज में, प्रत्येक स्थल पर इस प्रेरकवाणी का—स्वदेश मन्त्र का—यदि प्रति दिन ऊर्जस्वितापूर्वक पाठ किया जाय तो भारत अवश्य महानता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाएगा।

'वर्त्तमान भारत' नामक लेख के उपर्युक्त 'स्वदेश मन्त्र' में, स्वामीजी अपनी अग्निधर्मी प्रेरक वाणी में आगे लिखते हैं, "ऐ वीर ! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, बोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं; तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकार कर कहो कि भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरी जवानी की फुलवारी और मेरे बुढ़ापे की काशी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो कि—'हे गौरीनाथ ! हे जगदम्बे ! मुझे मनुष्यत्व दो; माँ मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बना दो।'

एक बालक अत्यन्त नटखट था। पिता ने सोचा कि इसे ऐसा कठिन कार्य सौंप दूँ कि यह कार्य करने में ही मशगूल रहे, बदमाशी न करे जिससे मैं अपना कार्य कर सकूँ। पिता ने भारत का नक्शा लेकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े किये और पुत्र को कहा—इस नक्शे को फिर से जोड़ कर लाओ। पिता ने सोचा कि बेचारे बालक को भूगोल का इतना ज्ञान तो है नहीं; नक्शे को पूरा जोड़ने में दिन निकल जायगा। किन्तु क्या आश्चर्य ! थोड़ी ही देर में बालक जोड़े हुए नक्शे को लेकर उपस्थित हुआ। पिता ने आश्चर्य से देखा कि नक्शा ठीक है। काश्मीर से कन्याकुमारी

तक सभी राज्य अपने-अपने स्थान पर हैं। उन्होंने विस्मय से बच्चे को पूछा "इतना कठिन कार्य इतनी जल्दी कैसे कर डाला ?" बालक ने हँसते हुए कहा—बात ऐसी है पिताजी कि मैं नक्शे को टुकड़ों को जोड़ रहा था—तब देखा तो पीछे एक आदमी का चित्र था। मैंने आदमी के हाथ, पाँव, सिर को ठीक जगह जोड़ दिया तो भारत का नक्शा अपने आप संपूर्ण बन गया !"

राष्ट्रीय एकता आज बड़ी ही विकट समस्या है। देश की सभी समस्याओं की जड़ में है, चरित्र का अभाव। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना मात्र दो हजार करोड़ रुपये की थी। आठवीं पंचवर्षी योजना दो लाख अस्सी हजार करोड़ रुपयों की है। फिर भी आज भारत के लगभग २० करोड़ लोग भर पेट भोजन नहीं कर पाते हैं। इसका कारण क्या है ? भ्रष्टाचार की व्यापकता, जिसके मूल में है—चरित्र का अभाव। आज हम स्वामीजी के इस सन्देश को अधिकाधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं कि—जब तक मनुष्य का चरित्र-निर्माण नहीं होगा तब तक देश का पुनर्निर्माण नहीं होगा। जबतक हर भारतवासी अपनी मातृभूमि से प्रेम नहीं करेगा, तब तक भारत का विकास नहीं होगा। और स्वामीजी का भारत द्वारा समस्त विश्व पर विजय प्राप्त करने का सपना अधूरा ही रह जायगा।

चरित्र निर्माण के उपाय हैं—आत्म विश्वास, आत्म निर्भरता, आत्मज्ञान, आत्मसंयम युवा वर्ग के लिए और आत्म त्यागा मानो यह पंचशील है। इस विषय पर मार्ग दर्शन स्वामी विवेकानन्दजी के प्रेरणादायी ग्रन्थों में से मिलेगा। इसलिए रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन द्वारा स्वामी विवेकानन्द—शिकागो भाषण—शताब्दी के अवसर पर अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, उड़िया आदि भाषाओं में स्वामीजी के जीवन और सन्देश सम्बन्धी चार पुस्तकों की प्राय: २० लाख प्रतियाँ युवा वर्ग में नि:शुल्क वितरण के लिए प्रकाशित की गयीं। स्कूल, कॉलेजों में छात्र-छात्राओं के बीच स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन और संदेश पर प्रकाश डालने एवं प्रश्नोत्तरों के उपरान्त उपर्युक्त पुस्तकों का नि:शुल्क वितरण किया गया ताकि आज की शिक्षा पद्धति में चरित्र-निर्माणकारी शिक्षा का जो अभाव है उसकी कुछ हद तक पूर्ति की जा सके। युवा वर्ग की सुषुप्त शक्ति एवं ऊर्जा को जाग्रत करने में ये पुस्तकें महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी भूमिका अदा कर रही हैं।

एक नयी चेतना वर्तमान युवावर्ग में जागृत हो रही है। नोबेल पुरस्कार विजेता फ्रेंच विद्वान रोमाँ रोलाँ के शब्दों में ये पुस्तकें युवावर्ग को विद्युत का झटका (ELECTRIC SHOCK) देती हैं।

अन्त में स्वामी विवेकानन्दजी महाराज के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि वे हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे हम उनके उपदेशों का पालन कर अपने उज्ज्वल चरित्र का निर्माण कर सकें जिससे राष्ट्र का पुनर्निर्माण हो सके तथा भारत की आध्यात्मिकता की विश्व पर पर विजय हो एवम् सभी सुख और शान्ति प्राप्त कर सकें।

जय स्वामीजी ! जय भारत !!

—अनुवाद : अशोक चंचल

# महाभारत

— स्वामी नित्य ज्ञानानन्द
बेलुड़ मठ

महाभारत आर्य-साहित्य का सबसे महान ग्रन्थ है। विषय और कलेवर दोनों ही दृष्टियों से इसकी महत्ता सर्वमान्य है। यदि आर्यों की सभ्यता, संस्कृति तथा आदर्श का सम्पूर्ण चित्र देखना हो, तो वह महाभारत में ही उपलब्ध हो सकता है। महाभारत एक अगाध महासागर के समान है। यही कारण है कि विद्वानों का महाभारत के प्रति विशेष आदर है।

## महाभारत की रचना

महाभारत के निर्माता हैं भगवान् वेदव्यास। इसकी रचना के सम्बन्ध में एक सुन्दर कथा आती है। वेदों का विभाजन करने के बाद सर्वज्ञ ऋषि कृष्णद्वैपायन व्यास ने महाभारत प्रणयन करने की परिकल्पना की। इसके लिए उन्हें एक योग्य लेखक की आवश्यकता थी। भगवान् व्यास का यह विचार जानकर स्वयं ब्रह्माजी उनकी प्रसन्नता और लोकहित के लिए उनके पास आये। व्यासजी ने ब्रह्माजी को आदर-सत्कार करके एक आसन पर बैठाया तथा उनसे बोले, 'भगवन्! मैंने एक श्रेष्ठ काव्य प्रणयन करने की परिकल्पना की है। परन्तु पृथ्वी पर इसको लिख देनेवाला कोई नहीं मिलता, यही चिन्ता का विषय है।' इस पर ब्रह्माजी ने कहा, 'महर्षे! आप अपना ग्रन्थ लिखने के लिए गणेश जी का स्मरण कीजिए।' यह कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और व्यासजी ने गणेशजी का स्मरण किया। स्मरण करते ही गणेशजी उपस्थित हुए। व्यासजी ने उनसे अपनी शुभ इच्छा व्यक्त की। गणेशजी ने कहा, 'यदि मेरी कलम एक क्षण के लिए भी न रुके तो मैं लिखने का काम कर सकता हूँ।' व्यासजी ने कहा, 'ठीक है; किन्तु आप बिना समझे न लिखियेगा।' गणेशजी ने 'तथास्तु' कहकर लिखना स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् व्यासजी कहने लगे और गणेशजी लिखने लगे। बीच-बीच में व्यासजी ऐसे कठिन श्लोकों की रचना कर डालते थे कि सर्वज्ञ गणेशजी को भी अपनी लेखनी बन्द करके उन श्लोकों के अर्थ का विचार करना पड़ता था, उतने में ही महर्षि व्यास दूसरे बहुत-से श्लोकों की रचना मन-ही-मन कर लेते थे। इस प्रकार महाभारत की रचना पूर्ण हुई।

## नामकरण

व्यासजी ने अपने महाकाव्य में राजा भरत के महान् वंशजों का आख्यान लिपिबद्ध किया है, इसीलिए उसका नामकरण उन्होंने "महाभारत" किया है। भारत का अर्थ है भरत के वंशज। सौति उग्रश्रवा के अनुसार एक समय देवताओं ने व्यास-प्रणीत इस महाकाव्य को तथा चारों वेदों को तराजू पर रखकर तौला। तुला पर रखने से यह महाकाव्य महत्व और गुरुत्व दोनों में अधिक हो गया; अतः महान् और भारी होने के कारण यह महाभारत कहलाता है।

## पठन-पाठन कर्त्ता

व्यासजी ने महाभारत की रचना करके सर्वप्रथम अपने पुत्र शुकदेवजी को इसका अध्ययन

कराया। फिर अन्य योग्य शिष्यों को इसकी शिक्षा दी। इस प्रकार इस महान् ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ। जब व्यासजी को यह बात मालूम हुई कि परीक्षित नन्दन राजर्षि जनमेजय सर्प-यज्ञ में दीक्षित हो गये हैं, तब वे वहाँ आये। राजा जनमेजय ने उनका आदर-सत्कार किया तथा सुवर्ण सिंहासन पर बैठाकर उनकी पाठ-पूजा की। तदन्तर राजा ने उनसे महाभारत सुनाने का अनुरोध किया। जनमेजय का आग्रह देखकर महामुनि व्यास ने पास ही बैठे हुए अपने शिष्य वैशम्पायन से कहा, वैशम्पायन! कौरव और पांडवों के बीच भ्रातृ-विच्छेद एवं युद्धादि की सारी कथाएँ तुम मुझसे सुन चुके हो। अब वही कथा तुम जनमेजय को सुनाओ।' अपने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर वैशम्पायन ने राजा जनमेजय तथा अन्य सभासदों को महाभारत की कथा सुनाई।

लोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा भी राजा जनमेजय की सभा में उपस्थित थे। वैशम्पायन के मुख से महाभारत की कथा सुनने के बाद विभिन्न तीर्थों में घूमते हुए वे नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचे। वहाँ पर उस समय शौनक ऋषि अन्य ऋषि-मुनियों के साथ द्वादशवर्षव्यापी यज्ञ कर रहे थे। शौनकादि ऋषि ने सौति उग्रश्रवा से भगवान् कृष्णद्वैपायन रचित महाभारत कथा सुनाने का अनुरोध किया। तदन्तर श्रेष्ठ पौराणिक उग्रश्रवा ने शौनकादि ऋषियों को वह पुण्य कथा सुनाई। सौति उग्रश्रवा का प्रवचन ही आज महाभारत ग्रन्थ के रूप में हमें उपलब्ध है। इसमें कुल अठारह पर्व तथा उपाख्यान आदि सहित करीब एक लाख श्लोक हैं। उपाख्यानों को बाद देने पर श्लोकों की संख्या चौबीस हजार रह जाती है जिसमें मूल कथा का वर्णन है। अठारह पर्वों के नाम निम्न लिखित हैं—

| | |
|---|---|
| १. आदिपर्व | १०. सौप्तिक पर्व |
| २. सभा पर्व | ११. स्त्री पर्व |
| ३. वन पर्व | १२. शान्ति पर्व |
| ४. विराट पर्व | १३. अनुशासन पर्व |
| ५. उद्योग पर्व | १४. आश्वमेधिक पर्व |
| ६. भीष्म पर्व | १५, आश्रमवासिक पर्व |
| ७. द्रोण पर्व | १६· मौसल पर्व |
| ८. कर्ण पर्व | १७. महाप्रस्थान पर्व |
| ९. शल्या पर्व | १८. स्वर्गारोहन पर्व |

हरिवंश नामक महाभारत का एक परिशिष्ट है जिसे खिलपर्व कहा जाता है, इसमें श्लोकों की कुल संख्या बारह हजार है।

प्रतिपाद्य विषय

महाभारत इतिहास तो है ही, अत्यन्त मनोरम काव्य भी है। स्वयं व्यासजी ने ब्रह्माजी से काव्य कहकर इसका परिचय दिया है—"कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।" ब्रह्माजी ने भी इसका काव्यत्व स्वीकार किया है। महाभारत में वन, पर्वत, उद्यान, नदी, सरोवर, नगर तथा अन्यान्य रमणीय प्रदेशों का इतना सरस और मनोरम वर्णन है, जिसे पढ़ते-पढ़ते किसी भी सहृदय का हृदय मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। विभिन्न उपाख्यानों और प्रसंगों में शृंगार, वीर, करुण, रौद्र, अद्भुत, भयानक, वीभत्स और शान्त—सभी रसों की अभिव्यञ्जनाएँ देखी जाती है जिनमें शान्तरस ही प्रधान है। कुरुओं का प्राचीन राज्य इस महाकाव्य की रंगभूमि है, तथा साम्राज्य के आधिपत्य के लिए कौरवों और पाण्डवों का महासंग्राम ही इसकी मूल कथा है। इसमें कुरुवंश का विस्तार, गान्धारी की धर्म-

शीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुन्ती के धैर्य, दुर्योधनादि की दुष्टता तथा पाण्डवों की सत्यता का वर्णन किया गया है। साथ ही इसकी प्रत्येक कथा से भगवान् श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा प्रकट होती है। मूल कथा को केन्द्र करके भगवान् व्यास ने अगणित उपाख्यानों का समावेश अपने महाकाव्य में किया है, परन्तु मूल कथा की रूपरेखा इन सब अवान्तर प्रसंगों में भी सुरक्षित रखी गयी है।

केवल एक महाकाव्य की रचना करना व्यासजी का अभिप्राय नहीं था। इसके माध्यम से एक महत् उद्देश्य की सिद्धि करना ही उनका लक्ष्य था। भगवान् व्यास समस्त लोक, कर्म-उपासना-ज्ञानरूप वेद, अभ्यासयुक्त योग, धर्म-अर्थ-काम-प्रतिपादक सारे शास्त्र तथा लोक-व्यवहार को पूर्ण रूप से जानते थे। अपने इस अक्षय ज्ञान-भण्डार को ही वे महाभारत के रूप में मानव-जाति के लिए धरोहर रख गये हैं। व्यासजी ने अपने ग्रन्थ के सम्बन्ध में ब्रह्माजी से स्वयं कहा था—'भगवन्! मैंने एक श्रेष्ठ काव्य की रचना की है। इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदांग, उपनिषद् और वेदों का विस्तार किया है। इतिहास और पुराणों का विस्तृत वर्णन है। भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालों का वर्णन हुआ है। जरा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि भावों के अभाव का निश्चय किया है। आश्रमों एवं वर्णों के धर्म पतिपादित हुए हैं। चारों वर्णों की उत्पत्ति तथा तप और ब्रह्मचर्य की विधि बतायी गयी है। ग्रह, नक्षत्र, तारों तथा युगों का प्रमाण, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, देवता और मनुष्यों की उत्पत्ति के कारण आदि का प्रतिपादन किया गया है। तीर्थ, नदी, पर्वत, वन, समुद्र और दिव्य नगरों का वर्णन है। दुर्ग, सेना और व्यूह-रचना की विधियाँ तथा युद्ध की चतुराई बतलायी गयी है। नाना प्रकार की जातियाँ और उनके बोलने-चालने के ढंग बताये गये हैं। नीतिशास्त्र का वर्णन किया गया है तथा जो सर्वव्यापी परब्रह्म-तत्व है, उसका भी प्रतिपादन किया गया है।' महाभारत को यदि हम सम्पूर्ण वेद, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र आदि का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। महाभारत का माहात्म्य-कीर्तन करते हुए महात्मा वैशम्पायन ने कहा भी है—

"धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम्
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनाभितबुद्धिना ॥
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥"

अर्थात्, असाधारण बुद्धिमान् वेदव्यास ने इस पवित्र धर्मशास्त्र, श्रेष्ठ अर्थशास्त्र तथा मोक्षशास्त्र की रचना की है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के विषय में जो कुछ महाभारत में कहा गया है, वही अन्यत्र है तथा जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। यही कारण है कि महाभारत की तुलना महासागर से की गयी है।

"यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरूर्महागिरिः।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥"

अर्थात् जिस प्रकार ऐश्वर्यशाली समुद्र तथा महापर्वत मेरू रत्ननिधि के रूप में प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार महाभारत को भी रत्ननिधि कहा जाता है' इसके भीतर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों से सम्बन्ध रखनेवाले अनन्त उपदेश रत्न भरे पड़े हैं। संसार की सर्वमान्य पुस्तक श्रीमद्भगवतगीता भी उसी रत्नाकर का एक ज्वाज्वल्यमान रत्न है। महाभारत की अनुपम देन है—गीता का अमर संदेश। गीता किसी सम्प्रदाय

विशेष का ग्रन्थ नहीं है, वह है मनुष्य की युग-युगान्तर की आध्यात्मिक अनुभूति का सर्व-श्रेष्ठ फल।

## प्रभाव

महाभारत ने प्राचीन काल से भारतीय जीवन एवं साहित्य पर अपना प्रगाढ़ प्रभाव विस्तार कर रखा है। स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, निरक्षर-विद्वान, मुमुक्षु-मुक्त सब ने अपना जीवनादर्श इस महाकाव्य से प्राप्त किया है। महाप्रतिभा और मनीषा सम्पन्न महर्षि व्यास द्वारा चित्रित असंख्य महामहिमामय उन्नत और उदात्त महापुरुषों के जीवन-चरित भारतवासियों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। धर्मभीरु धृतराष्ट्र के हृदय में चलनेवाले पुत्र-प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व; पितामह भीष्म का उदात्त और उन्नत चरित्र; महाराज युधिष्ठिर का धार्मिक स्वभाव; और उनके चारों भाइयों के उन्नत चरित्र, स्वामी-निष्ठा, तथा अप्रतिम वीरता; कर्ण की दानशीलता एवं शौर्य; मानवीय ज्ञान की चरम सीमा प्राप्त श्रीकृष्ण का अद्वितीय व्यक्तित्व; और महासती तपस्विनी रानी गान्धारी, पुत्रवत्सला कुन्ती, पतिपरायणा और सर्वसहा द्रौपदी आदि रमणियों के चरित्र तथा इस महाकाव्य के अन्यान्य अगणित चरित्र विगत सहस्र वर्षों से समस्त आर्य-जाति की यत्नसंचित जातीय सम्पत्ति रहे हैं और उसके विचारों, कर्तव्याकर्तव्यों तथा नीति संबंधी सिद्धान्तों की आधारशिला रहे हैं।

संस्कृत के तीन महाकाव्य किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध और नैषधीयचरित महाभारत की ही कथावस्तु को लेकर निर्मित हुए हैं। महाकवि कालिदास का अभिज्ञान-शाकुन्तल, कविवर नारायण का वेणीसंहार तथा अन्यान्य कविवरों के प्रभावती-परिणय और धनञ्जय विजय आदि अनेकों नाटकों तथा काव्यों की आधार शिला महाभारत की ही सुन्दर कथाएँ हैं। यह ठीक ही कहा गया है इस पृथ्वी पर कोई भी ऐसी सुन्दर कथा नहीं है जो महाभारत के उपाख्यानों में न आ गयी हो—"अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।" सभी अच्छे कवि महाभारत की कथा का सहारा लेंगे, इसकी कथा के आधार पर काव्य लिखेंगे—"इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते"—यह भविष्योक्ति आज अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई है।

अतएव रामायण और महाभारत आर्य जाति की अमूल्य सम्पद् है। भारत के सभी नर-नारियों के हृदय के अन्तरतम प्रदेश में इन दोनों महाकाव्यों का स्थान है। रामायण और महाभारत के चरित्रों का सुख-दुःख, आशा-निराशा, धर्म-कर्म' त्याग-तितिक्षा किसी पात्र-विशेष अथवा नायक-नायिका की अनुभूति मात्र नहीं है, वह हैं भारत के सभी आर्य नर-नारियों के हृदय की अनाविल अनुभूति की प्रतिच्छाया। इसीलिए शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीतती जाती हैं, परन्तु रामायण और महाभारत का पवित्र स्रोत भारत में नाममात्र को की नहीं सूखता।

♣

---

बड़ा आदमी वे हैं, जो अपने हृदय के रक्त से दूसरों का रास्ता तैयार करते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

# पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली में आध्यात्मिकता का समावेश

—डा० विश्वम्भर व्यास

प्रार्थना का महत्व निर्विवाद है। लोग अपने दुख-दर्दों से घबराकर परेशान होकर ईश्वर से प्रार्थना करते नजर आते हैं। असल में यह जीवन का आवश्यक पक्ष हो चला है। शायद ही कोई व्यक्ति हो जो प्रार्थना के महत्व को स्वीकार न करता हो। हां, नास्तिकों की बात अलग है। इसमें प्रभु के गुण, ऐश्वर्य का गुणगान किया जाता है और आत्म-दैन्य कथन को प्रमुख स्थान दिया जाता है। अस्पतालों वगैरह में औषधियों के साथ प्रार्थना को भी महत्व दिया जाता है। बीमार आदमी दवाइयों के साथ-साथ प्रभु की प्रार्थना भी करे। दवाइयों और डाक्टर के प्रति आस्था भी माने रखती है। भले ही, सामान्य दवाई ही क्यों न हो, बीमार की यदि उस पर आस्था है, तो आशातीत लाभ होते देखा गया है। उस साधु की बात ध्यान हो आती है जो केवल राख की पुड़िया बनाकर, द्वार पर आनेवाले मरीजों को दिया करता था···यह आस्था का ही चमत्कार था कि मरीजों को स्वास्थ्य लाभ होता गया और साधु की लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। प्रभु से की गयी प्रार्थना चामत्कारिक प्रभाव लिए होती है। जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई' से यही बात व्यक्त होती है। पश्चिमी जगत भी इसके प्रभाव से अनजान नहीं। इन दिनों वहां इस पर सर्वाधिक जोर दिया जा रहा है।

बीसवीं शताब्दी जहाँ एक ओर अपनी अंतिम सांसे ले रही है, वहीं विश्व में अपनी आधुनिक उपलब्धियों और औषधियों से लोगों को मोह भंग हो रहा है। अमेरिका में कई-कई बीमारियां गंभीर रूप धारण करती जा रही हैं। विशेष रूप से उच्च रक्तचाप, रीढ़ का दर्द, अस्थि रोग, अवसाद, कैंसर, एड्स···और जाने क्या-क्या नहीं। 'टाइम' के अनुसार बीमार लोगों में ६० से ९० प्रतिशत तक लोग मानसिक तनाव से ग्रस्त होते हैं। माइंड-बॉडी मेडिकल संस्था के अध्यक्ष बेनसन का विचार है कि परम्परागत औषधियों और शल्य चिकित्सा का परम्परागत तरीका, लगता है अपनी उपादेयता खोता जा रहा है। इसीलिए कई लोक वैकल्पिक चिकित्सा में सन्तुष्टि, आश्वास्ति पाते हैं। जहाँ लगभग ३० बिलियन डालर प्रतिवर्ष का व्यवसाय होता है। नवयुग डाक्टर्स पौर्वात्य-प्रिय आध्यात्मिकता के जरिये आजकल चिकित्सा को नया आयाम-प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि कुछ वैज्ञानिक भी चिकित्सा सम्बन्धी इस नयी धारा को काफी दिलचस्पी से देख रहे हैं। इन्हें जब चिकित्सा सम्बन्धी वांगमय में अनेक उपादेय तथ्यों का पता लगता है तो इनकी हैरानी का ठिकाना नहीं रहता। गौरतलब है कि यह अध्ययन इस बात की पुष्टि करता है कि व्यक्ति के लिए धर्म सार्थक है।

इस संधि में व्यापक अनुसंधान परीक्षण हुए हैं। १९९५ में अर्टयाआ हिचकोक मेडिकल सेंटर के २३२ हृदय रोगियों में से अधिकांश धार्मिक आस्था में ताकत और आराम की अनुभूति देखते हैं। जिन्होंने इसमें विश्वास नहीं किया, उनकी

दुगुनी तीन गुणा बढ़ गयी।

रक्तचाप सम्बन्धी ३० वर्षीय अनुसंधान के निष्कर्षों से पता लगता है कि चर्च जाने वालों में, नहीं जानेवालों की अपेक्षा कम रक्तचाप पाया जाता है जो कभी-कभार चर्च जाते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार १९६६ में ४००० बड़ी आयु के लोगों के आयु-अध्ययन से पता लगा कि नोर्थ केरोलिना में जो लोग धार्मिक सत्संग में हिस्सा लेते रहे हैं, उन्हें अवसाद रहित एवं अधिक स्वस्थ देखा गया है, अपेक्षाकृत उनके, जो घर पर ही पूजा-अर्चनादि करते हैं।

महिलाओं पर किये एक सर्वेक्षण का निष्कर्ष है कि ३० अस्थिरोग ग्रस्त महिलाओं में से, उनको अधिक लाभ हुआ जो ईश्वर पर यकीन करती थीं और धार्मिक समारोह में सम्मिलित होती रही। कहने का आशय है कि ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि जो लोग धर्म से प्रतिबद्ध हैं, वे चिंता अवसादादि बीमारियों से कम ग्रस्त हैं। बनिस्पत उनके जो अनास्थावादी हैं··· चर्चगामी नहीं हैं ऐसे लोगों में आत्महत्या की प्रवृत्ति कोई चार गुणा अधिक है। यह भी कि जो धार्मिक, सामाजिक समारोहों में सहर्ष शरीक होते हैं। उन लोगों की अपेक्षा जो नितांत अकेले और आस्थाविहीन जीवन जीते हैं, १४ गुना अधिक लाभ की स्थिति में होते हैं।

इस वैकल्पिक चिकित्सा के प्रवर्तक, हार्वर्ड के हर्बर्ट बेन्सन हैं। १९७५ में उनकी किताब 'द रिलक्शेसन रिसपोंस' से उन्हें अंतरराष्ट्रीय ख्याति मिली। उनकी स्थापना है कि सामान्य ध्यानयोग के अभ्यास से तनावजन्य बीमारियों में राहत मिल सकती है। मस्तिष्क को किसी एक आवाज अथवा बिंब पर ध्यानस्थ करने से उल्लेखनीय शारीरिक बदलाव की स्थिति आ जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ध्यानयोग से हृदय की धड़कनें, श्वास की गति एवं मस्तिष्क तरंग को आहिस्ता किया जा सकता है। मांसपेशियों को आराम मिल सकता है। इस क्रिया का लगातार अभ्यास करने से ७५ प्रतिशत अनिद्रा से ग्रस्त लोग निद्रा सुख प्राप्त कर सकते हैं। ३५ प्रतिशत बांझ स्त्रियां संतान प्राप्त करने की स्थिति में पहुँची हैं। और गंभीर दर्द से बेदर्द लोगों को दर्द-निवारक औषधियों में कमी करते पाया गया है। उनकी जिस नवीनतम किताब के इन दिनों काफी चर्चे हैं, उसका नाम है 'टाइमलैस हीलिंग'। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य धार्मिक आस्था से ही बना है। उनके रोगियों के यह कहने पर कि ध्यानावस्था में उन्होंने अपने को ईश्वर के निकट पाया, से उनका मनोबल बढ़ा है। ५ वर्ष के अध्ययन ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचाया कि जिसने अज्ञात सत्ता के जितना नजदीक अपने को पाया, उन्होंने उतना ही अधिक आरोग्य लाभ किया।

रोचेस्टर विश्वविद्यालय के मस्तिष्क विभाग के अध्यक्ष डेविड पेंटन की धारणा है कि ध्यानयोग एवं मस्तिष्क को नियन्त्रित करने से हार्मोन-सक्रियता की तब्दीली से रोग-निरोधक प्रणाली पर प्रभाव डाला जा सकता है और मस्तिष्क के मुख्यालय में रिलेक्शेसन रिसपोंस और धार्मिक अनुभूति में सह अस्तित्व आकस्मिक संयोग नहीं है। वैसे भी दवाओं के अनुसंधान के नतीजे हैं, कि यदि रोगी चिकित्सक के प्रति आस्थावान है तो सामान्य चीनी-युक्त गोली ही क्यों न हो, आरोग्य प्रदान करने की शक्ति से ओतप्रोत होती है। बेन्सन का स्पष्ट मानना है कि चिकित्सक में आस्था विलक्षण प्रभाव लिए होती है।

और यह सवाल कि क्या ईश्वर आस्थावान की तरफदारी करता है, और क्या प्रार्थना सुनी

जाता है ? वैज्ञानिक जैफरी लेविन का मानना है कि मैं सीधे-सीधे इसका अध्ययन तो नहीं कर सकता पर इसको एकदम नकारा नहीं जा सकता। एक टाइम सीएनएन सर्वेक्षण के अनुसार ८२ प्रतिशत अमेरिकी प्रार्थना की शक्ति पर यकीन करते हैं। ६४ प्रतिशत सोचते हैं कि डाक्टरों को भी उनके साथ प्रार्थना करनी चाहिये।

आइये जरा दीपक चोपड़ा के सम्बन्ध में कुछ जानें। मसलन यहाँ डा. हावर्ड पयूअर्स्ट की बात करें। १९९१ में उन्हें उनकी सौतेली बेटी ने उन्हें एक भारतीय आध्यात्मिक चिकित्सक दीपक चोपड़ा लिखित क्वेंटम नामक पुस्तक भेजी। डाक्टर पयुअर्स्ट ने पेनसलेवेनिया से अपना चिकित्सा अध्ययन पूरा किया था। पर चोपड़ा का सिद्धांत कि मनुष्यात्मा और शरीर में घनिष्ठ रूप से संबद्ध है—जैसी कोई सामग्री उसके कोर्स में नहीं थी। उसने प्रथम दृष्टया किताब पर अधिक तवज्जो नहीं दी।

बाद में उसे पता लगा कि वे खुद अग्रिम स्टेज के पीरटेट कैंसर से ग्रस्त हैं। स्थिति यह हो गयी है कि कोई शल्य चिकित्सा भी नहीं की जा सकती है। निदान चोपड़ा की किताब को पढ़ा। चोपड़ा का दावा था कि ध्यानयोग, सही भोजन और हिंदू-रहस्यवाद के पाश्चात्य संस्करण से बीमारी को रोका जा सकता है अथवा उल्टा जा सकता है। बस, फिर क्या था, उस पर चोपड़ा उन्माद ऐसा छाया कि हर रोज वह ३० मिनट का ध्यानयोग करता, प्रार्थना करता और प्रसन्नता से चोपड़ा सूत्रों का पारायण करता। उसके मन मस्तिक पर चोपड़ा ऐसे छा गये कि ३५० किलो-मीटर की परिधि में जहाँ कहीं भी चोपड़ा का व्याख्यान होता, पहुँच जाता। वह स्वस्थ हो गया। उसका ट्युमर अदृश्य हो गया। वह जानता था कि उसे किसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये।

(संवाद परिक्रमा)

(आर्यावर्त, पटना ५ सितम्बर, ९६ से साभार)

बोधकथा

# मीठी बोली का असर

किसी शहर में एक आदमी घूम-घूमकर शहद बेचता था। उसकी बोली भी शहद की तरह मीठी थी। जब वह 'शहद ले लो' की आवाज लगाता, तो जिसका मन शहद खरीदने का न होता, वह भी शहद खरीद लेता। लगभग रोजाना उसकी मटीका का एक-एक बूँद शहद बिक जाता।

शहद बेचने वाले का एक पड़ोसी दिन-ब-दिन बढ़ती उसकी खुशहाली देखकर डाह करने लगा था। एक दिन देखादेखी में उसने तय किया कि कल से वह भी शहद बेचा करेगा। खूब दौलत कमायेगा।

अगले दिन उसने भी अपने सिर पर शहद की मटकी रखी और मोहल्ले-मोहल्ले शहद बेचने निकल पड़ा। सदा की तरह उनके माथे पर त्योरियां थीं तथा आवाज में कर्कशता। वह जोर-जोर से 'शहद ले लो।' की आवाजें सुबह से शाम तक लगाता रहा। अजी, खरीदने की कौन कहे, किसी ने उसे पुकारा तक नहीं। वह इसका कारण नहीं समझ पाया। शाम को थका-मांदा अपनी किस्मत को कोसता हुआ घर लौटा।

घर के दरवाजे पर ही प्रतीक्षा करती हुई उसकी पत्नी खड़ी थी। पति का उतरा हुआ चेहरा देखकर वह सारा मामला समझ गयी। फिर भी उसने पूछा, 'आपके चेहरे पर इतनी झुंझलाहट क्यों है ?'

पति ने शहद की मटकी जमीन पर रखते हुए सुबह से शाम तक का सारा किस्सा कह सुनाया।

पत्नी बोली. 'जान लीजिये, कड़वी बोली बोलनेवाले का शहद भी कड़वा होता है। कड़वी बोली से लोग दूर भागते हैं। पहले आप अपनी वाणी में शहद पैदा कीजिये, तब शहद बेचिये।'

—सुधा सेठी

# सुनहला नेवला

—स्वामी विवेकानन्द

[ इस कथा के माध्यम से स्वामीजी ने अतिथि सेवा का महत्व और वास्तविक यज्ञ का तात्पर्य बताने की सफल चेष्टा की है। —सं०

कुरुक्षेत्र के युद्ध के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ के समय उन्होंने ब्राह्मणों और गरीबों में असीम धन-राशि का वितरण किया। राजा का दान देखकर चारों ओर धन्य-धन्य होने लगा। सब यही कहने लगे कि ऐसा यज्ञ न किसी ने पहले किया है और न किसी ने कभी देखा है।

यज्ञ समाप्त होने ही वाला था कि अचानक एक नन्हा-सा नेवला एक ओर से भागा आया और यज्ञ की भूमि पर लोट-लोट कर अपने शरीर को रगड़ने लगा। नेवले का आधा शरीर सोने का था। इस अद्भुत नेवले के ऐसे व्यवहार को देख सभी आश्चर्य करने लगे। जब नेवला मनुष्य की आवाज में बोलने लगा तब तो लोगों के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। सब लोग अपना-अपना स्थान छोड़ नेवले के समीप आ गये। नेवला कहने लगा, "तुम सब झूठे हो। युधिष्ठिर का यह यज्ञ असली यज्ञ नहीं है। यदि यह यज्ञ असली यज्ञ होता तो मेरा बचा हुआ आधा शरीर भी सोने का हो जाता।"

सभा में से एक ने पूछा, "ऐ नेवले, तुम यह क्या कह रहे हो? क्या तुम नहीं जानते कि इस यज्ञ में महाराज ने असंख्य धन-राशि का वितरण किया है? और तुम यज्ञ की निन्दा कर रहे हो। तुम्हें शायद ज्ञान नहीं है कि यह यज्ञ शास्त्रों और महापुरुषों के उपदेश के अनुसार सम्पूर्ण हुआ है। कहीं भी कोई भूल नहीं हुई है।"

नेवला मनुष्य के समान हँसकर कहने लगा, "मुझे यह सब जानने की आवश्यकता नहीं। अब भी मैं कहता हूँ कि यह सच्चा यज्ञ नहीं है।'

"तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है?"

"प्रमाण मेरा शरीर है। मैं स्वयं प्रमाण हूँ।"

सब चकित हो नेवले की बात सुनने लगे। नेवला कहने लगा, "एक असली यज्ञ मैंने पहले देखा है। उसी के बारे में मैं आज आपसे कहूँगा। कुरुक्षेत्र में एक कर्तव्यनिष्ठ ब्राह्मण रहता था। धन-उपार्जन करने की योग्यता न होने के कारण वह भिक्षा पर ही अपना निर्वाह करता था। उसके परिवार में स्त्री, पुत्र और पुत्र-वधू थे। भिक्षा से मिले अन्न से अतिथि सत्कार करने के पश्चात जो बच जाता उससे ही वह अपने परिवार का निर्वाह करता। इस प्रकार उनके दिन आनन्द से कट रहे थे।

"कुछ समय बाद उस देश में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। ब्राह्मण रोज भिक्षा के लिए निकलता, पर खाली हाथ लौट आता। घर में उपवास शुरू हो गया। कई दिन उपवास में कटे। पर एक दिन ब्राह्मण को भिक्षा में कुछ जौ के दाने मिले। ब्राह्मण के परिवार के आनन्द की सीमा न रही और जल्दी-जल्दी उन्हीं सत्तू तैयार किया।

"सत्तू चार भागों में बाँटा गया। खाने के लिए बैठते ही जा रहे थे कि द्वार पर एक अतिथि आ पहुँचा। अतिथि भूख से व्याकुल था। ब्राह्मण उसे आदर सहित भीतर ले आया। अतिथि कहने लगा, 'भूख से मेरे प्राण निकल रहे हैं। शीघ्र मुझे कुछ खाने को दो।'

"ब्राह्मण शीघ्रता से सत्तू का अपना भाग ले आया और अतिथि को दे दिया। अतिथि क्षुधा से इतना व्याकुल था कि कुछ क्षणों में सब खा गया और कहने लगा, 'इससे तो मेरा कुछ बना नहीं। कुछ तो और लाओ।'

"ब्राह्मण सोच में पड़ गया। अब और क्या देकर अतिथि को तृप्त करे। ब्राह्मण की पत्नी अपने पति की चिन्ता को जान गयी और ब्राह्मण को भीतर बुला कर कहने लगी, 'क्या चिन्ता है? मेरा सत्तू का भाग तुम अतिथि को दे दो। अतिथि तो देवता समान है। उसकी सेवा ही परम कर्त्तव्य है।'

"ब्राह्मण बोला, 'उपवास करते-करते तुम्हारा शरीर बहुत निर्बल हो गया है, किस तरह मैं तुम्हारा भाग किसी को दे सकता हूँ?'

पत्नी आग्रह से बोली, 'नहीं-नहीं, अतिथि बैठा हुआ है। शीघ्रता से मेरा भाग उसे दे आओ। तुम्हारा और मेरा एक ही धर्म है। तुम्हारे कर्तव्य में त्रुटि रहने पर मेरा कर्तव्य भी त्रुटिपूर्ण होगा। तुम्हारी कोई बात मैं नहीं सुनूँगी। जाओ मेरा भाग अतिथि को दे दो।'

"कोई अन्य उपाय न देखकर ब्राह्मण ने ऐसा ही किया। अतिथि ने वह सत्तू भी शीघ्र ही खा डाला, पर फिर भी उसकी भूख न मिटी।

"यह देखकर ब्राह्मण फिर सोच में पड़ गया। उसकी ऐसी अवस्था देख पुत्र कहने लगा, 'पिताजी आप चिन्ता क्यों करते हैं, मेरा भाग भी तो रखा है, आप उसे अतिथि को दे देवें।'

"ब्राह्मण बोलने में असमर्थ होने पर भी कहने लगा, तू तो अभी बालक ही है, तेरा शरीर उपवास नहीं सहन कर सकता। हम तो बूढ़े हैं, हमें उपवास सहने में कुछ विशेष कष्ट नहीं होता, मैं किसी तरह से तेरे मुख का ग्रास छीनकर दूसरे के हाथ में दे दूँ?'

"पुत्र ने उत्तर दिया, 'आप यह क्या कहते हैं पिता जी! अतिथि तो नारायण है। उसकी सेवा करना तो धर्म है। मेरे कष्ट को सोचकर आप इतने मलीन हो रहे हैं? मुझे कुछ नहीं होगा। आप मेरा भाग अतिथि को दे दें।' ब्राह्मण को बहुत दुःख हुआ; क्योंकि वह पुत्र का भाग किसी तरह भी नहीं लेना चाहता था। किन्तु अतिथि की असन्तुष्टि देखकर विवश था। सो लड़के का भाग अतिथि को दे दिया, फिर भी वह तृप्त न हो सका।'

"अब तो बेचारा ब्राह्मण घोर चिन्ता में पड़ गया। ससुर की चिन्ता देखकर बहू अपना सत्तू का भाग ले आयी और कहने लगी, 'पिताजी, चिन्ता की क्या बात है? मेरा भाग ले लीजिए और अतिथि की सेवा कीजिए।'

"बहू की बात सुनकर ब्राह्मण अधीर हो रोने लगा और बोला, 'बेटी, मेरा बूढ़ा शरीर कष्ट सह सकता है, पर तेरा कोमल शरीर कष्ट कैसे सहेगा? तुम्हारा कुम्हलाया मुख मुझसे देखा नहीं जाता। न खाते-खाते तुम्हारे शरीर की क्या दशा हो गयी है?'

'ससुर को सांत्वना देते हुए बहू बोली—'पिता जी, आप दुःखी न हों। आप मेरे गुरुओं के गुरु और देवताओं के देवता हैं। आपकी छोटी सी सेवा करने से भी मुझे जो आनन्द मिलता है उसे आप जानते ही हैं। अतिथि बैठा है। अब आप और देरी न करें और यह सत्तू ले जाकर उसे दे दें।'

"बहू ने हठपूर्वक सत्तू ससुर के हाथ में रख दिया। काँपते हाथों से ब्राह्मण ने वह अतिथि को दिया। कोमल बालिका के मुख से भोजन छीनकर अतिथि को देते हुए ब्राह्मण का हृदय बड़ा द्रवित हो उठा, पर अतिथि की सेवा तो करनी ही थी। अब और चारा ही क्या था!

"अब जाकर कहीं अतिथि की राक्षसी क्षुधा शान्त हुई। अत्यन्त प्रसन्न हो ब्राह्मण को आशीर्वाद देते-देते वह चला गया।

"मनुष्य का सारा जीवन एक परीक्षा है। भगवान नाना प्रकार से परीक्षा लेते हैं। वह ही अतिथि का रूप धर इस गरीब ब्राह्मण की परीक्षा लेने आये थे। इस प्रकार की कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना सबके बस की बात नहीं है। ब्राह्मण परिवार की दशा उपवास करते-करते बहुत क्षीण हो चुकी थी। बचने की कोई आशा न थी। उसी रात को चारों ने प्राण त्याग दिये।

नेवला कहता गया, "मैं उसी ब्राह्मण के घर में रहता था। शुरू से अन्त तक मैंने इस घटना को देखा—जहाँ बैठकर अतिथि ने भोजन किया था उस स्थान पर कुछ सत्तू धरती पर बिखर गया था। मेरे मन में न जाने क्या विचार आया कि मैं जाकर उस धरती पर लोटने लगा। उसी से मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। बाकी के शरीर को सोने का करने के लिए मैंने सारी धरती का चक्कर लगा डाला है। जहाँ भी सुनता हूँ कि कोई यज्ञ होने वाला है वहाँ जाकर यज्ञ की धरती पर लोटता हूँ, किन्तु आज तक कुछ परिणाम नहीं हुआ। आज यहाँ आकर भी मैंने यत्न किया पर शरीर में कुछ भी अन्तर नहीं आया।

"इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह सच्चा यज्ञ नहीं है। भिखारी ब्राह्मण ने अतिथि की सेवा के लिए जो यज्ञ किया था, तुम्ही बताओ, क्या उसके साथ युधिष्ठिर के इस यज्ञ की तुलना हो सकती है।"

("विवेकानन्द की कथा-कहानियाँ" से)

# रामकृष्ण मिशन, दिल्ली में प्रधानमंत्री देवगौड़ा की घोषणा

देश की संस्कृति को आघात पहुँचाने वाला कोई काम नहीं करेंगे ।

नयी दिल्ली, १२ अक्तूबर (भाषा) । प्रधानमंत्री एच० डी० देवगौड़ा ने आज शपथपूर्वक कहा कि वे कभी ऐसा कोई कदम नहीं उठायेंगे जिससे देश के सांस्कृतिक ताने-बाने को कोई आघात लगे ।

रामकृष्ण मिशन में मिशन के अनुयायियों को संबोधित करते हुए श्री देवगौड़ा ने कहा कि भारत में ऐसे बहुत से महान सपूत पैदा हुए हैं जिनके उपदेशों का पालन हममें से हर एक को करना चाहिये ।

उन्होंने कहा दूसरों को इन महान संतों की सीख पर चलने का उपदेश देने की जगह मैं खुद शपथ लेता हूँ कि मैं अपने कर्त्तव्यों का पालन इस तरह करूँगा जिससे हमारे समाज के ताने-बाने को कोई आघात न लगे ।

उन्होंने कहा कि देश आज एक नाजुक दौर से गुजर रहा है और हमारे सामने संकट मुँह बाये खड़े हैं । ऐसे समय में यह जानना अनिवार्य नहीं है कि इन सबके लिए कौन जिम्मेदार है । जरूरत इस बात की है हम स्थिति में सुधार करें ।

उन्होंने कहा कि यदि हम संतों के एक भी उपदेश का पालन रोजमर्रा के जीवन में कर सकें तो स्थिति में बहुत सुधार लाया जा सकता है ।

प्रधानमंत्री ने आश्वासन दिया कि सरकार मिशन की माँगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी । मिशन ने कलकत्ता स्थित स्वामी विवेकानन्द के पैतृक निवास को राष्ट्रीय स्मारक घोषित करने की माँग की थी ।

इससे पहले मिशन के सचिव स्वामी गोकुलानंद सहित अन्य सदस्यों ने श्री देवगौड़ा का स्वागत किया । श्री देवगौड़ा ने जब स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया उस समय मिशन के अनुयायियों ने वैदिक मंत्रोच्चार किया ।

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८१


विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

# युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।
हर खण्ड का मूल्य रु० ५०/- तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु० १२०/-

प्रकाशक :

**रामकृष्ण मठ**

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर—४४००१२


श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।